GISI Impact Factor 0.2310
मई-जून 2015
वर्ष - 9 अंक - 3
ISSN 0973-9777
ijraeditor@yahoo.in

भारतीय शोध पत्रिका

आन्वीक्षिकी

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

www.anvikshikijournal.com

प्रकाशन
एम.पी.ए.एस.वी.ओ. द्वारा आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित
अन्य सहसंयोजन
सार्कः अन्तर्राष्ट्रीय शोध-पत्रिका
एशियन जर्नल ऑफ मार्डन एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस
वाराणसी, उ०प्र० (भारत)

MPASVO

मई-जून २०१५
वर्ष-९
अंक-३

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

सम्पादक

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ. सारिका त्रिपाठी, डॉ. मुन्नी देवी भास्कर, डॉ. प्रमोद आनंद तिवारी, डॉ. प्रमोद यादव, डॉ. कृष्ण कुमार तिवारी, डॉ. आरती बंसल, डॉ. अर्चना शर्मा, डॉ. आभा रानी, डॉ. कन्हैया, डॉ. अंजली बंसल गोयल, डॉ. शरदेंदू बाली, डॉ. डी. पी. सिंह, डॉ. गीता जोशी, डॉ. रूपाली जैन, डॉ. किरन कुमारी, डॉ. मधुलिका, डॉ. नीलू कुमारी, डॉ. मनीषा आमटे, डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय, डॉ. मनोज कुमार राय, दिनेश मीणा, गुंजन, रमेश चन्द, शंकर, पायल, इन्दरजोत कौर, सिद्धनाथ पाण्डेय, राघवेन्द्र सिंह, आनन्द मोहन, मौसमी कुमारी, देवाशीष पाण्डेय, अमर नाथ, मधुलिका सिन्हा, मोहम्मद अज़फर हसनैन, सन्तोष कुमार, चन्द्रशेखर, प्रो. अंजली श्रीवास्तव

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

रेव डोडामगोडा सुमनासार (श्रीलंका), वेन केन्डागेले सुमनारांसी थेरो (श्रीलंका), रेव टी धम्मारतना (श्रीलंका), पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), फ्रा बूनसर्मस्त्रिथा (थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), मोहम्मद सौरजाई (जाबोल, ईरान), माजिद करीमजादेह (ईराक), डॉ. अहमद रेजा केईखाय फरजानेह (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

सारांश एवं सूचीपत्र

मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र दिल्ली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका सूचीपत्र वाराणसी, सेन्ट्रल न्यूज एजेंसी सूचीपत्र दिल्ली, डी.के.पब्लिकेशन सूचीपत्र दिल्ली, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस कम्यूनिकेशन एण्ड इन्फारमेशन रिसोर्स सूचीपत्र दिल्ली, नोएडा कॉलेज ऑफ फिज़िकल एजुकेशन सूचीपत्र गौतमबुद्ध नगर

पाठकों से

आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका प्रत्येक दो माह (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर एवं नवम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका 6 भाग हिन्दी एवं 6 भाग अंग्रेजी एवं 3 अतिरिक्तांकों के भाग में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 5000+1000/-डाक शुल्क, एक प्रति 1200+100/- डाक शुल्क, वैदेशिक : 6000+डाक खर्च, एक प्रति 1000+डाक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। आन्वीक्षिकी एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है,अत: किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387,
टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com
मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 1 मई 2015

मनीषा प्रकाशन

(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/ 2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

वर्ष-9 अंक-3 मई-2015

शोध प्रपत्र

उपनिषदों के ज्ञानखण्ड में नारी विमर्श -डॉ. मनीषा शुक्ला 1-6
देव नदी सरस्वती का वर्तमान में प्लक्षप्रस्रवण से उद्गम पौराणिक प्रमाण -डॉ. शरदेंदू बाली एवं डॉ. डी. पी. सिंह 7-14

साहित्य में आधुनिकता और भारतीयता -डॉ. विभा मेहरोत्रा 15-20
रतन कुमार सांभरिया की कहानियों में व्याप्त दलित संवेदनायें -डॉ. आरती बंसल 21-23

महिला संतों की भक्ति भावना -श्याम सुन्दर धाकड़ 24-27
सिद्ध साहित्य -डॉ. रमेश टण्डन 28-33

छायावादी कविता में रेखाचित्र का प्रभाव -डॉ. विभा मेहरोत्रा 34-37
आंगनबाड़ी शिक्षिकाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन -अनिता डहरिया एवं डॉ. पुष्पा तिवारी 38-41

संस्थागत संगीत शिक्षा प्रणाली का स्वरुप -डॉ. गीता जोशी 42-43
जय-जगत् : विश्वव्यापी समाज की कल्पना -ज्योति गुप्ता 44-47

उत्तर प्राचीन काल में चाहमानों में जैन धर्म का प्रचार -डॉ. सुम्बुला फिरदौस 48-49
जगदीश स्वामीनाथन के कला विकास का समीक्षात्मक अध्ययन -सन्तोष कुमार एवं डॉ. प्रसन्न पाटकर 50-53

डॉ. जगदीश गुप्त एक अद्भुद कलाकार : कवि एवं चित्रकार -चन्द्रशेखर 54-56
महिलाओं के विशेषाधिकार -डॉ. विभा त्रिपाठी 57-60

विश्वशांति पर गाँधी एवं विनोबा के विचार -डॉ. ज्योति गुप्ता 61-65
जलवायु : परिवर्तन का मंडराता संकट -प्रो. अंजली श्रीवास्तव 66-69

उपासना का विधान -डॉ. स्मिता द्विवेदी 70-73
आधुनिक युग में महिलाओं की स्थिति -विजय कुमार प्रभात 74-77

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9**,1-**6**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 17 अप्रैल 2015

उपनिषदों के ज्ञानखण्ड में नारी विमर्श

डॉ. मनीषा शुक्ला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *उपनिषदों के ज्ञानखण्ड में नारी विमर्श* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मनीषा शुक्ला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

वेद का अर्थ बोध या ज्ञान है। विद्वानों ने संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् इन चारों के संयोग को समग्र वेद कहा है। उपनिषद् को वेद का शीर्ष भाग कहा गया है, वेदान्त कहा गया है, क्योंकि यह वेदों का अन्तिम (सर्वश्रेष्ठ) भाग है। भारतीय दर्शन में इसे आध्यात्मिक मानसरोवर कहा जा सकता है, जिससे विनिःसृत ज्ञान की सरितायें इस पुण्य भूमि में मानव मात्र के अभ्युदय (भौतिक उन्नति) एवं निःश्रेयस (अध्यात्मिक कल्याण) के लिये प्रवाहमान है। स्वामी विवेकानन्द ने अपने एक प्रवचन में कहा था, ''मैं उपनिषदों को पढ़ता हूँ तो मेरे आंसू बहने लगते हैं। यह कितना महान ज्ञान है ? हमारे लिये यह आवश्यक है कि उपनिषदों में सन्निहित तेजस्विता को अपने जीवन में विशेष रूप से धारण करें। उपनिषदें ही शक्ति की खानें हैं; उनमें ऐसी शक्ति भरी पड़ी है, जो सम्पूर्ण विश्व को बल, शौर्य और नव-जीवन प्रदान कर सके।''

उपनिषद् एक मात्र दर्शन ग्रंथ ही नहीं, इसमें भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों, जीवन मूल्यों तथा नैतिक मानदण्डों के भी दर्शन होते हैं। तत्कालीन सामाजिक संगठन ब्राह्मणादि का स्थान, आश्रम व्यवस्था तथा नारी की दशा के वर्णन के साथ यज्ञ की विश्व प्रक्रिया के रूप में एवं श्रेष्ठ कर्म के रूप में व्याख्या (यशो वै श्रेष्ठतमं कर्म[1], ब्रह्म वै यज्ञः[2], यज्ञो वै विष्णुः[3]) भी मिलती है। उपनिषदों का मूल विषय 'ब्रह्म विद्या' को माना गया है; परन्तु उपनिषदों के संदर्भ में मैंने नारी कथा अथवा नारी महिमा को मूल विषय बनाया है।

भारतीय सभ्यता का सर्वोत्कृष्ट प्राचीनतम काल वैदिक काल माना गया है। इस काल को यदि सम्पूर्ण संसार की सभ्यता का श्रेष्ठतम युग कहास जाये तो अत्युक्ति न होगी। वैदिक काल में समाज के अभ्युत्थान उत्कर्ष प्रेयस एवं निःश्रेयस में पुरूष वर्ग तथा नारी का योगदान समान रूप से रहा है। समानता के इस अधिकार को देखते हुये सहज में ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि तत्कालीन समाज में बिना भेदभाव के पुरूष और नारी को आगे बढ़ने का अधिकार प्राप्त था। हमारे पूर्वजों की यह मान्यता रही है कि जिस प्रकार प्रकृति के बिना पुरूष (परमात्मा) का कार्य अपूर्ण रहता है, ठीक उसी प्रकार नारी

* प्रधान सम्पादिका, आन्वीक्षिकी पत्रिका, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

के बिना नर का जीवन भी अधूरा है। अतः हम कह सकते हैं कि समाज में उस समय नारी का वही स्थान था, जो शरीर में नाड़ी का होता है।

सृष्टि का श्रीगणेश नारी और पुरूष दोनों के पारस्परिक गुणों के आधार पर ही माना गया है। बिना एक के दूसरे की स्वतंत्र अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। श्रद्धा की प्रतीक नारी ने पुरूष समाज के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं बौद्धिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। नारी सदैव पुरूष की सफलता में सहायिका रही है। जीवन की ज्योति, शक्ति एवं प्रेरणा की स्रोत नारी ने अपने-अपने सहज गुणों से सर्वदा पुरूष की सहज गुणों से सर्वदा पुरूष की सहज चेतना को प्रदीप्त किया। समाज में नारी को जो स्थान मिला है, वह उसकी साधना, सत्यता, सहनशीलता, सौम्यता, सौष्ठवता आदि सहज गुणों का ही फल है। धन की अधिष्ठात्री लक्ष्मी के रूप में बलदायिनी दुर्गा के रूप में तथा ज्ञानदायिनी माँ सरस्वती के रूप में नारी का समाज में सदा स्वागत और सम्मान रहा है।

नारी के महिमा का ज्ञान केवल शब्द ब्युत्पत्ति के सहारे नहीं किया जा सकता। हाँ! एक चावल के दाने को स्पर्श करने की भांति जिस तहर चूल्हे पर चढ़ाये गये अन्य चावलों की स्थिति का परिज्ञान कर दिया जाता है, उसी तरह 'नारी' शब्द से भले ही पूरी अभिव्यक्ति न हो परन्तु उसके गुण क्रियाओं का मान तो अवश्य ही हो जाता है।

नृ अथवा नर से बना नारी शब्द का प्रयोग बहुतायत रूप में हुआ है जिसका फल है कि उपनिषदकाल के परवर्त्ती वाङ्मय में नारी शब्द चर्चा का मुख्य विषय बन गया है। नृ + अन् + ङीन् = नारी अथवा नर + ङी0ष् = नारी, इन दोनों व्युत्पत्तियों को महाभाष्यकार महर्षि पतंञ्जलि ने ठीक मानते हुये ''नुर्धर्म्यानारी, नरस्यापि नारी[4]'' का महत्व प्रतिपादित किया है। ऋक् संहिता[5] में नृ से बने नर और नारी का प्रयोग वीरता का कार्य करने, नेतृत्व करने, यज्ञ करने, अतिथियों का स्वागत करने तथा युद्ध में अपने पति के साथ जाने का वृतान्त उपलब्ध होता है।

वेदमाता (सरस्वती) के मंदिर में प्रवेश पाने का उपनिषत्काल में सभी को समान अधिकार था। नारी का गृहस्थ जीवन में ही नहीं अपितु आध्यात्मिक जगत् में भी अपना विशिष्ट स्थान था। मैत्रेयी, गार्गी, कात्यायनी आदि अनेक ऋषिकाओं का उल्लेख वेद मंत्रों की दृष्टि के रूप में हुआ है। वृहदारण्यकोपनिषद् के वाक्चक्नवी गार्गी और मैत्रेयी के प्रसंग से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उपनिषत्काल में ब्रह्मवादिनी, तत्वज्ञानी तथा विद्यत्सभाओं में तत्वज्ञानी ऋषियों से लोहा लेने में सक्षम स्त्रियाँ भी थीं।[6] सामवेदीय केनोपनिषद्[7] में इन्द्र-यक्ष संवाद में बुद्धिमती भगवती उमा देवी का वर्णन मिलता है यक्ष से बुरी तरह परास्त होने पर आकाश में स्थित अतिशय शोभामयी भगवती हैमवती (हिमाचल) पुत्री उमादेवी से इन्द्र ने पूछा। उमादेवी उन्हें ब्रह्म कहती हैं। देवी उमा के इस उत्तर से इन्द्र ने स्पष्ट समभ लिया कि वह दिव्य यक्ष निश्चर्य ही ब्रह्म थे।[8] बृहदारण्यको-पनिषद्[9] में याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद में मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य से ब्रह्मविद्या की शिक्षा ली। तथा इसी उपनिषद् में याज्ञवल्क्य-गार्गी संवाद[10] स्त्रियों के ब्रह्मविद् होने का प्रमाण मिलता है।

उपर्युक्त विवरणों से पता चलता है कि उपनिषत्काल में कन्यायें बालकों की तरह अपरा और परा विद्या में निष्णात होती थीं और उनके बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास में कोई बाधक नहीं था। पाणिनी के वार्तिककार कात्यायन और महाभाष्यकार पतञ्जलि ने भी इस बात की पुष्टि की है। नारी-समाज को वेद मंत्रों के अध्ययन से विरत रखने वाला आज पण्डितमानी जो चाहें तर्क दें, परंतु वैदिक युग पुकार-पुकार कर कह रहा है कि वेद पढ़ने का स्त्री को समान अधिकार है।

वैदिक काल से हमारे देश में विवाह को एक पवित्र संस्कार माना गया है। उपनिषत्काल में विवाह प्रथा का पूर्ण विकास हो चुका था। माता-पिता आदि संरक्षक अपनी पुत्री के लिये गुणवान, शीलवान तथा रूपवान वर का अन्वेषण करते थे। वैवाहिक सम्बन्ध नर-नारी दोनों में परिवर्तन लाता है परन्तु यह परिवर्तन उस समय नारी जीवन को अधिक प्रभावित करता था। नारी विवाह के बाद अपने पितृगोत्र एवं जाति को छोड़कर अपने पति के जाति एवं गोत्र में अपने को आज भी ढाकती है। नारी पूरी गृहस्थी की केन्द्र बिन्दु मानी जाती थी। गृहिणी ही घर थी, उसके बिना घर की कल्पना करना ही व्यर्थ समभा जाता था। सर्वाधिक महत्व की बात तो यह है कि उस समय प्रकृति मां की गोद में स्वतंत्रता पूर्वक जीवन-यापन करती हुई कन्या अपने जीवन साथी को चुनने में पूर्ण स्वतंत्र थी।

उपनिषत्कालीन समाज में बहुपत्नी प्रथा भी विद्यमान थी। वामदेव्य सामगान की उपासना के प्रकरण में बहुपत्नीत्व का स्पष्ट वर्णन है। एक वाक्य के अनुसार जिस उपासक की अनेक पत्नियाँ हों, वह उनमें से किसी का भी परित्याग न करें।[11]

वृहदारण्यकोपनिषद् में भी याज्ञवल्क्य ऋषि की दो पत्नियों मैत्रायणी तथा कात्यायनी का उल्लेख मिलता है।[12] कुछ विद्वानों का विचार है कि उस समय बाल विवाह की प्रथा भी थी। छान्दोग्योपनिषद् में उषस्ति चाक्रायण अपनी 'आटकी' पत्नी के साथ कुरू देश में विचरण कर रहा था।[13] शंकराचार्य जी ने अपने भाष्य में आटकी का अर्थ स्त्रीजनोचित अविकसित अंङ्गो वाली कन्या किया है।[14] पण्डित शिवशंकर शर्मा जी ने अर्थ किया है, ''जिसके यौवनसूचक और स्त्रीव्यंजक स्तनादि अभी उत्पन्न नहीं हुये हैं अथवा जो विदेश भ्रमण करने में समर्थ हो अथवा जो अटनशला हो।[15] उपनिषद् में पत्नी के लिये भार्या और जाया शब्दों का प्रयोग हुआ है।[16]

पारिवारिक परिवेश में पत्नी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका थी। इसे महिमा कहा गया है।[17] पत्नी के द्वारा पति को यथा समय सुझाव देने का विवरण प्राप्त होता है किन्तु उसे मानना या न मानना पति की इच्छा के ऊपर निर्भर था।[18] पत्नी के प्रति पति का अगाध प्रेम भी उल्लेखनीय है।[19] उपनिषत्कालीन समाज में स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। किसी भी स्त्री का अपमान नहीं करना चाहिये, यह उद्घोष भी इसमें उपलब्ध है।[20]

सृष्टि को उत्पत्ति के प्रसंग में नारी प्रकृति की स्पंदन का आधार बनती है, पुरूष ब्रह्म तो सदा प्रकृतिस्थ होकर प्रकृति जन्य गुणों का उपभोग करता है। धार्मिक दृष्टि से साध्वी तथा राजनीतिज्ञ के रूप में नारी सदा युगद्रय रही है। छांदोग्योपनिषद् में ऊँकार की व्याख्या में....

छा0उ0 में स्त्री-पुरूष के जोड़ का वामदेव्य साम की उपासना के तुल्य कहा गया है।[21] ऋषि दाम्पत्य और उनके माध्यम से चलने वाले प्रजनन चक्र को वामदेव साम के अन्तर्गत कहा है।[22]

मिथुन शब्द का प्रयोग मिलता है। कहा गया है कि जिस प्रकार मिथुन (स्त्री-पुरूष) का मिलन सृष्टि उत्पत्ति में सहायक होता है, उसी प्रकार वाणी और प्राण अथवा ऋचा और साम के जोड़े के संयोग से ऊँकार का संसृजन होता है।[23] इसी संदर्भ में कठोपनिषद् में वर्णित है- जिस प्रकार दो अरणियों के मध्य से अग्नि उत्पन्न होता है उसी प्रकार गर्भवती स्त्रियों द्वारा विधिवत् पोषित गर्भ धारण करने से सृष्टि की उत्पत्ति होती है।[24] चूँकि नारी सृष्टि उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अतः नारी पूजनीय है।

'नारी' इस शब्द में स्नेह, वात्सल्य, ममता, त्याग, अनुराग आदि कितने भाव निहित है, जिनका स्पष्ट मूल्यांकन कर पाना भाषा के सामर्थ्य के बाहर प्रतीत होता है। पारिवारिक रिश्तों के लिये अतीत काल में जब संज्ञाओं का सृजन हुआ होगा तब शायद 'माँ' शब्द ही सर्वप्रथम निकला होगा। उसी का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि जब कोई शिशु या प्रौढ़ अपने मुख से माँ या अम्मा कहता है तो माँ निहाल हो उठती है। मातृत्व स्वयं में एक अद्भुत अनुभव है। मातृत्व विहीन नारी का जीवन अधूरा है।

ममता, महनीयता और वात्सल्य की प्रतिमूर्ति माता को शब्दों की सीमा में बांधना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। मातृ शब्द केवल जन्म देने वाली नारी तक ही सीमित नहीं है, क्योंकि वहाँ नदी, अन्तरिक्ष, जल एवं पृथिवी की व्यापकता को भी सूचित करने वाला बन गया है। इस व्यापकता की परिधि में परिक्रमा करता हुआ मातृ शब्द निःसंदेह पवित्रता की पराकाष्ठा को छू लेता है। हमारे वैय्याकरणों ने मातृशब्द का सीधा अर्थ-आदरणीया किया है। महर्षि यास्क[25] ने अपने निर्वचनमें मातृशब्द को निर्मात्री के रूप में देखा है जो वस्तुतः सही है क्योंकि अपनी संतति के निर्माण के माध्यम से माता पूरे देश जाति तथा समाज का निर्माण करती है। वेद में माता के दर्शन की आकुलता का स्पष्ट उल्लेख है जिससे उसके सर्वाधिक घनिष्ठ और प्रिय सम्बन्ध का पता चलता है। परमात्मा को पिता कहने की अपेक्षा माता कहने में भक्त को अधिक संतोष मिलता है।[26] अथर्ववेद[27] में कहा गया है कि माता अपने अमृत तुल्य दूध से पुत्र का पोषण करती थी। यजुर्वेद में माता की तुलना जल से की है।[28]

उपनिषत्काल में माता को प्राण कहा गया है।[29] तथा माता-पिता को मारने वाले को ब्रह्मघाती कहा गया है।[30] छान्दोग्योपनिषद् में सनत्कुमार महर्षि नारद से कहते हैं- इस प्रकार माता-पिता के रूप में प्राण ही होते हैं।[31] इस काल में माता के नाम से भी गोत्र का उल्लेख प्राप्त होता है।[32] कठोपनिषद् में देवमाता अदिति का वर्णन मिलता है। यम-नचिकेता संवाद में यम ने अदिति को सर्वशक्ति सम्पन्न तथा जीवनी-शक्ति के रूप में दर्शाया है तथा ब्रह्म की उपाधि दी है।[33] इसी उपनिषद् में यम पत्नी का भी उल्लेख मिलता है, जिसका हृदय मातृत्व से परिपूर्ण है। यम के न रहने पर उनकी पत्नी

ने नचिकेता से अन्न, जल ग्रहण करने की प्रार्थना की है।[34] इससे उनका पुत्र के प्रति वात्सल्य प्रतीत हो रहा है। वे कहती हैं- जिनके घर ब्राह्मण- अतिथि भोजन किये बिना निवास करता है, उस मंद बुद्धि पुरूष के पुत्र, पशु आदि तथा समस्त फल को अतिथि नष्ट कर देता है।[35] तत्कालीन समाज में माता का स्थान आदरणीय माना गया है। माता की तुलना अग्निहोत्री से करते हुये कहा गया है कि भूखे बालक माता की उपासना (प्रतीक्षा आश्रय) करते हैं।[36] पिता के अभाव में माता से विचार विमर्श करते हुये उल्लेख मिलता है। मातृलोक का वर्णन मिलता है।[37] इस काल में आचार्य की पत्नी को माता के रूप में स्वीकार किया गया है। छान्दोग्योपनिषद् में गुरू की स्त्री से गमन करने वाले को घोर पापी कहा गया है। यह सच है कि माता के मुस्कान की समक्ष 'मोक्ष' नगण्य है। मातृशक्ति ही सृष्टि का सृजन करती है। इसके स्नेह में पृथ्वी पलती है, और इसका पराभव ही प्रलय का सूचक है।

अथर्ववेद से सम्बन्धित शयत्युपनिषद् में नारी को 'श्री' शब्द से सम्बोधित किया गया है।[38] समाज में पुरूष अपने नाम के पहले 'श्री' शब्द का प्रयोग करके गौरवान्वित होता है। इस प्रकार से हम देख सकते हैं कि पुरूष की सत्ता नारी से ही है। नारी को पुरूष की अर्द्धांगिनी कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में यहाँ तक कहा गया है कि नारी नर की आत्मा का आधा भाग है। नारी की उपलब्धि के बिना नर का जीवन अधूरा है।

उपनिषत्कालीन समाज में स्त्रियों को पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त थी, यह बात उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा से सिद्ध होती है। भ्रमणशील स्त्रियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित सत्यकाम की माता जावाला इसी प्रकार की महिला थीं। तत्कालीन समाज में स्त्री के लिये 'स्वैरिणी' अर्थात् व्याभिचारिणी शब्द का भी प्रयोग प्राप्त होता है। सत्यकाम द्वारा अपना गोत्र पूछे जाने पर माता जावाला निर्भीकतापूर्वक उससे कहती हैं- तात! मैं नहीं जानती कि तुम किस गोत्र के हो। अपनी युवावस्था में बहुतों की परिचर्या करते हुये मैंने तुम्हें प्राप्त किया है।[39] यद्यपि केकय नरेश अश्वपति अपने राज्य में स्वैर पुरूष तथा स्वैरिणी स्त्रियों के होने का निषेध करते हैं।[40] अतः इस बात से स्पष्ट है उनके राज्य में न सही परन्तु उस '''में स्वैरिणी स्त्रियाँ भी थीं।

उपनिषत्काल में नारी सौन्दर्य का भी वर्णन मिलता है। कठोपनिषद् में स्वर्ग अप्सराओं के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। यम नचिकेता से कहते हैं कि हे नचिकेता! रथ और (कर्णप्रिय) वाद्य विशेषों से युक्त इन स्वर्ग की अप्सराओं को प्राप्त कर लो, मनुष्यों द्वारा इस प्रकार की स्त्रियाँ प्राप्त करना संभव नहीं है। हमारे द्वारा प्रदत्त इन रमणियों से आप अपनी सेवा-सुश्रुषा करायें; किन्तु मृत्यु के पश्चात् आत्मा क्या होती है, यह हमसे न पूछें।[41]

तत्कालीन युग में स्त्रियों को भोग की वस्तु भी समझा जाता था। सुसज्जित दासियाँ राजा-महाराजा के मनोरंजन की साधन थी, जैसा कि राजा अश्वपति सत्ययज्ञ से कहते हैं कि- आपके पास हार से सुसज्जित दासियाँ एवं खच्चरों जुता हुआ रथ भी विद्यमान है।[42] जानश्रुति पौत्रायण ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिये रैक्व ऋषि को हजार निष्क (तत्कालीन मुद्रा) खच्चरियों से जुटा रथ तथा अपनी पुत्री को भी उपहार स्वरूप प्रदान करता है।[43]

सत्य, ज्ञान और तप के संकल्प से मनुष्य मातृलोक स्व-सृलोक आदि से सम्पन्न होकर अपनी महिमा का वर्णन करता है। नारी सन्तानोत्पत्ति जैसे महनीय भार का वहन करती है। अतः उपनिषद् ने उसे यज्ञाग्नि कीसंज्ञा से आभिहित किया है।[44] जिस काम्यकर्मों में स्वप्न में स्त्री के दर्शन हो तो उस कार्य में समृद्धि समझनी चाहिये। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि नारी के बिना समाज अधूरा है।

नारी को शक्ति-भक्ति और गति माना गया है। दया, करूणा, क्षमा की स्रोत नारी समाज की शक्ति है। माता-पिता तथा बड़ों के प्रति भक्ति है तथा जगन्निय की सृष्टि संचालन में गति है। नारी का आदर्श अपने स्वामी के प्रति निष्ठा रूप में, सन्तान के प्रति स्नेह रूप में, दुःखियों के प्रति करूणा रूप में, शत्रु के प्रति क्षमा के रूप में, और सम्पूर्ण संसार के प्रति जगद्धात्री के रूप में प्रकाशित है।

वीरवती, पुत्रवती, सौभाग्यवती बनी उपनिषत्कालीन नारी अपने पति के कन्धा से कन्धा एवं कदम से कदम मिलाकर अपनी गृहस्थी को स्वर्ग बनाने के लिये अहर्निश तत्पर रहती थी। दूसरी ओर पुरूष भी अपनी पत्नी को सहचरी, सह-धर्मिणी मानकर उसका सम्मान बढ़ाते हुये जीवन-ज्योति को सदा प्रज्ज्वलित रखने में अपना पुरूषत्व मानता था।

काश! आज का समाज भी उपनिषत्कालीन समाज का संदेश सुनता और जीवन को सुखद बनाने के लिये नर नारी को समाज की उन्नति में सहभागी मानता। दहेज जैसे दानवी दानवृत्ति से वरत होकर अपनी बेटी, बेटे और बहुरानी में समदर्शी बनने का प्रयास करता।

नारी को गौरव तथा सम्मान मिलने से ही राष्ट्र जाति और समाज का हित है; क्योंकि यह नारी ही है जो परामर्श के समय नर को एक सुयोग्य मंत्री की तरह मंत्रणा देने में सक्षम है। अन्त में हम नारी शिरोमणि माता सरस्वती से प्रार्थना करते हैं कि- हे ज्ञानदायिनी माता सरस्वती! सहृदय होकर आप हमें अपने ज्ञान सागर की तरल-तरंगों से तरंगित करें जिससे हम एक बार फिर भारत माता की सन्तान की खाली झोली को 'नारी सदा पुण्य राशि है' की भावना से भरकर भारत को भारत बनाने के संकल्प को साकार रूप दे सकने में समर्थ हो सकें।

स्रोत

[1]शतपथ ब्राह्मण, 1/1/1/5
[2]एतरेय ब्राह्मण, 7/22
[3]शतपथ ब्राह्मण, 1/9/3/9
[4]महाभाष्य, 4/4/9
[5]ऋग्वेद संहिता, 7/20/05, 8/77/8, 10/18/7, 10/86/10-11
[6]का0 मनुदेवबन्धु- वृहदारण्यकोपनिषद् ः एक अध्ययन का समाजदर्शन अध्याय
[7]केनोपनिषद्, 3/12
[8]केनोपनिषद्, 4/1
[9]वृहदारण्यकोपनिषद्, 2/4/3
[10]वृहदारण्यकोपनिषद्, 3/6/1
[11]न काञ्चन परिहरेत्तद्व्रतम्। छान्दोग्योपनिषद्, 2/13/2
[12]वृहदारण्यकोपनिषद्, द्वितीय अध्याय, चतुर्थ ब्राह्मण
[13]छान्दोग्योपनिषद्, 1/10/1
[14]छान्दोग्योपनिषद्, 1/10/1 पर शांकर भाष्य
[15]छान्दोग्योपनिषद्, 1/10/1 पर शिवशंकर शर्मा भाष्य
[16](क)'दास भार्यं क्षेत्राण्यायतनानीति'- छा0 उप0 7/24/2; (ख) 'आटिक्या सह जाययोषस्तिर्ह'-छा0 उप0 1/10/1
[17]छान्दोग्योपनिषद्, 7/24/2
[18]छान्दोग्योपनिषद्, 4/10/2
[19]छान्दोग्योपनिषद्, 1/10/5
[20]छान्दोग्योपनिषद्, 2/13/2
[21]छान्दोग्योपनिषद्, 1/1/6
[22]कठोपनिषद्, 2/1/8
[23]निरूक्त
[24]त्वं हि नः पितावसो त्वं माता-शतकृतो बभूविथ (ऋ0 9/98/1)
[25]माता पुत्रं यथा सिंचाम्येनं भूम ऊर्णु हि (अथर्व0 सं0 8/3/30)
[26]आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु (यजु0 4/2)
[27]छान्दोग्योपनिषद्, 7/15/1
[28]छान्दोग्योपनिषद्, 7/15/3
[29]छान्दोग्योपनिषद्, 7/15/4
[30]छान्दोग्योपनिषद्, 4/4/2

[31]कठोपनिषद्, 2/1/7
[32]कठोपनिषद्, 1/1/7
[33]कठोपनिषद्, 1/1/8
[34]छान्दोग्योपनिषद्, 5/24/5
[35]छान्दोग्योपनिषद्, 4/4/1
[36]शायत्युपनिषद्, 4/3 यौवने त्वामलभे, 4/3
[37]छान्दोग्योपनिषद्; बह्वहं चरन्ति परिचारिणी यौवने त्वामलभे (4/4/2)
[38]छान्दोग्योपनिषद्; बह्वहं चरन्ति परिचारिणी यौवने त्वामलभे (5/11/5)
[39]कठोपनिषद्, 1/1/25
[40]छान्दोग्योपनिषद्, 5/13/2
[41]छान्दोग्योपनिषद्, 4/3/2
[42]'योषा वाव गौतमाग्निः' -छान्दोग्योपनिषद्, 5/8/1-2
[43]'यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति समृद्धिं तत्र जानीयान्तस्मिन्सपननिदर्शने।'
[44]ऋग्वेद संहिता, 1/3/12

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,7-14
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 06 मार्च 2015

देव नदी सरस्वती का वर्तमान में प्लक्षप्रस्त्रवण से उद्गम पौराणिक प्रमाण

डॉ. शरदेंदू बाली* एवं डॉ. डी. पी. सिंह**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *देव नदी सरस्वती का वर्तमान में प्लक्षप्रस्त्रवण से उद्गम पौराणिक प्रमाण* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *शरदेंदू बाली एवं डी. पी. सिंह* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

वर्तमान समय में जिला अम्बाला के मुलाना-बराडा क्षेत्र में बहने वाली नदी मारकण्डा प्राचीन काल की सरस्वती नदी है। यह तथ्य महाभारत ग्रंथ का विस्तृत अध्ययन करने पर सिद्ध हो जाता है। इस प्रसंग का उल्लेख पौराणिक साहित्य में भी मिलता है। ये प्राचीन ग्रन्थ स्पष्ट रूप से वर्णन करते हैं कि ऋगवेद में वर्णित प्लक्ष सरस्वती नदी महाभारत काल में काफी क्षीण हो गई थी। यह धारा पुनः वृक्ष के मूल से प्रकट हुई थी। पौराणिक साहित्य का अध्ययन करने पर प्लक्षप्रस्रवण का भी वर्णन प्राप्त होता है। प्लक्षप्रस्रवण आज कल जिला सिरमौर में काला आम्ब नाम स्थान पर विद्यमान है। इसी वन में प्लक्ष के वृक्ष अधिकता से मिलते है। ऋषि मारकन्डेय जी का आश्रम भी इसी वन में स्थित है।

पुराणों के अनुसार सरस्वती नदी जो कि प्राचीन समय में विशाल काय समुद्र के समान थी, महाभारत काल में भयंकर सूखा पड़ने के कारण विलुप्त होने को थी। इस धारा का मुख्य भाग पाताल लोक में चला गया था। शेष अंश पृथ्वी पर बचा रहा। वैदिक साहित्य में उल्लेखों के अनुसार यह धारा बिखर कर अन्य सात धाराओं में विभक्त हो गई थी। वह भाग जो धरातल में चला गया था, वह भाग भारत वर्ष के उत्तर पश्चिमी भाग में पृथ्वी की सतह से स्रोतों के रूप में जगह-जगह प्रस्फुटित हुआ। सदियों तक मानसून की वर्षा न होने के कारण यहाँ की भूमि का जल स्तर एव नदी की धारा का प्रवाह काफी घट गया था। यहाँ पर रहने वाले निवासी जल के अभाव में इधर-उधर भटकने लगे। कुछ लोग अन्य स्थानों पर जाकर बस गये। अफगानों के लगातार हमलों के कारण अन्य प्रजातियाँ एवं जनसंख्या विलुप्त हो गई। जो लोग बच गये उनके मानस पटल पर इस क्षेत्र की स्मृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनी छाप छोड़ती गई। इस तरह लोगों की स्मृति भी क्षीण होती गई। इसी स्मृति को रेशियल मेमोरी भी कहा जाता है। इसी स्मृति के कारण ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण समय के साथ आगे बढ़ता रहा।

* प्रोफेसर, सर्जरी विभाग, एम. एम. यूनिवर्सिटी [मौलाना] अम्बाला (हरियाणा) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)
** असिस्टेंट प्रोफेसर, सर्जरी विभाग, एम. एम. यूनिवर्सिटी [मौलाना] अम्बाला (हरियाणा) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

श्री मारकण्डेय महान तपस्वी ऋषि थे। इनके ही नाम पर एक महापुराण का नाम मारकण्डेय पुराण है। यह सम्मान अन्य किसी ऋषि को प्राप्त नहीं हैं। सरस्वती नदी प्लक्ष के मूल से ऋषि मारकण्डेय जी के आश्रम से प्रस्फुटित होकर संस्कृत एवं परिष्कृत हो गई थी। स्थानीय जनमानस इस धारा को मारकण्डेय नदी के नाम से जानने लगे और इस नदी को बहुत ही ज्यादा सम्मान देते है। इस नदी के तट पर बहुत से मन्दिरों का निर्माण किया गया। रविवार के दिन यहाँ के स्थानीय निवासी इस पवित्र स्थान पर ढोल-नगाड़े बजाकर मारकण्डेय नदी की पूजा अर्चना करते हैं। वर्ष के अधिकतर समय में इस धारा में जल का अभाव रहता है; परन्तु इससे इस नदी की महत्ता कम नहीं होती है। वर्ष भर यहाँ पर पूजा चलती रहती है। मानसून के समय यह सूखी सी जल धारा समुद्र के समान विकराल रूप धारण करती है। इस समय भूमि में जल स्तर बढ़ जाता है। सभी स्थानों पर फसलें एवं वृक्ष लगा दिये जाते हैं। मानसून के जल से यहाँ की भूमि में हिमालय पर्वत की श्रेणियों से बहकर मृदा आती रहती है। यहीं मृदा यहाँ की भूमि को उपजाऊ बनाती है। यह जल धारा यहाँ के निवासियों के लिए जीवन दायिनी है। इसके जल से ही यहाँ पर भरपूर फसले पैदा होती है।

इसी क्षेत्र में अमरी, ओमला, बेगना एवं टागंरी नाम की बरसाती नदियाँ भी बहती है, परन्तु अन्य किसी जल धारा को यह सम्मान प्राप्त नहीं है। किसी अन्य नदी की पूजा इस तरह से नहीं की जाती है। यह तथ्य भी मारकन्डेय नदी की महानता सिद्ध करता है।

पौराणिक साहित्य में सरस्वती नदी की एक और शाखा का वर्णन भी प्राप्त होता है। इस धारा को साँभ्रमती के नाम से उल्लेखित किया गया है। वर्तमान समय की साबरमती नदी जो गुजरात प्रान्त में बहती है, सरस्वती नद की ही एक शाखा है। गुजरात प्रदेश में सारस्वत कुलीन ब्राहमणों का आवास है। सरस्वती नदी से सम्बन्धित होने के कारण ही इस समुदाय का नाम सारस्वत है। सावरमती नदी का यह क्षेत्र लाल पीली मिट्टी का बना हुआ है। इस क्षेत्र की मृदा (भूमि) का रंग लाल होने का प्रसंग भी स्कन्ध पुराण के नागर खण्ड में मिलता है। प्राचीन काल में ऋषि वशिष्ठ एवं ऋषि विश्वामित्र के आश्रम सरस्वती के किनारे पर ही थे। किसी प्रसंग को लेकर दोनों ऋषियों में शत्रुता हो गई। ऋषि विश्वामित्र बहुत ही क्रोधी स्वभाव वाले थे। ऋषि विश्वामित्र ने सरस्वती नदी से आग्रह किया कि वह ऋषि वशिष्ठ के आश्रम को मुनि के साथ ही बहा कर ऋषि विश्वामित्र के निकट ले आये। मैं ऋषि वशिष्ठ से युद्ध करूँगा और वशिष्ठ ऋषि को मार दूँगा। सरस्वती ने ऐसा करने को मना कर दिया। इस पर ऋषि विश्वामित्र बहुत क्रोधित हुए। उन्होंने श्राप देकर सरस्वती जल को रक्त रजित दिया। इस प्रकार सरस्वती की इस साबरमती धारा में रक्त रजित जल बहने लगा। विभिन्न स्थानों से राक्षस वहाँ आकर प्रवास करने लगे। समयानुसार राक्षस इस क्षेत्र के निवासी हो गये। यह स्थान अब राक्षसों का आवास हो गया था। इससे सरस्वती को बहुत दुख हुआ। सरस्वती ने ऋषि वशिष्ठ से प्रार्थना की और श्राप मुक्त करने का आग्रह किया। ऋषि वशिष्ठ ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। वह प्लक्ष वृक्ष के पास गये। वहाँ से प्लक्ष वृक्ष के मूल से सरस्वती जल स्त्रोत को प्रस्फुटित कर जल की निर्मल, स्वच्छ धारा को जन्म दिया। इस जल धारा से रक्त रजित जल स्वच्छ एवं संस्कृत हो गया। इस तरह यह क्षेत्र राक्षस विहीन हुआ। परन्तु आज भी इस सावरमती क्षेत्र की भूमि का रंग लाल पीला है।

ततः प्रभृति संप्राप्तं कथं तोयं प्रकीर्तय। सरस्वत्या महाभाग सर्वं विस्तरतो यद।।2।। उस दिन से लेकर कहो कि पुनः सरस्वती के प्रवाह में जल कैसे हुआ। हे महाभाग! यह सब विस्तार से कहो।

सूत उवाच, ''बहुकालं प्रवाहः स सरस्वत्या द्विजोत्तमाः। महान महान रक्त मयो जातो भूतराक्षससेवितः।।3।। कस्यचित्वथ कालस्य वसिष्ठो मुनिसत्तमः। अर्बुदस्थस्तया प्रोक्तो दीनया दुःखयुक्तया।।4।। तवार्थाय मुने शप्ता विश्वामित्रेण कोपतः। रूधिरौधवहा जाता तपस्विजनवर्जिता।।5।। तस्मात्कुरू प्रसादं मे यथा स्यात्सलिलं पुनः। प्रवाहे मम विपेन्द्र प्रयाति रूधिरं क्षयम्।।6।। त्रैलोक्य-करणे विप्र संक्षये वा स्थितौ हि वा। नाशक्तिर्विद्यते काचित्तव सर्वमुनीश्वर।।7।।'' सूत जी बोले- हे द्विजोत्तम! वह सरस्वती महानदी का प्रवाह बहुत काल पर्यन्त भूत तथा राक्षसों से सेवित महान् रक्तरूप को प्राप्त हुआ। यहाँ काल संख्या नहीं, कही। इसलिये लिखा है (*महाभारते। एवं सरस्वती शप्ता विश्वामित्रेण धीमता। अवहच्छेणितोन्मिश्रं तोयं संवत्सरं तदा।।* म0 भा0 श0 अ0 42, श्लोक 39। अर्थात् महाभारत में लिखा है, इस प्रकार जब बुद्धिमान विश्वामित्र के द्वारा सरस्वती को शाप दिया गया, तब उसने एक साल भर रक्त मिश्रित जल बहाया।)।।3।। पुनः किसी समय के अनन्तर आबु पर्वत पर विराजमान मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ जी से उसने (सरस्वती नदी) दुःखी होकर दीनता से कहा।।4।। हे मुनि! तुम्हारे निमित्त ही विश्वामित्र ने कुपित होकर शाप दिया। जिससे मैं रक्तसमूह हो बहाने वाली हुई; तथा तपस्विजनों ने भी त्याग दिया।।5।। हे विप्रेन्द्र (ब्राह्मणों में

श्रेष्ठ) जिस प्रकार पुनः जल हो जाये तथा मेरे प्रवाह में रक्त नाश को प्राप्त हो। ऐसी कृपा मुझ पर करो।।6।। हे विप्र! हे मुनिश्वर! तीनों लोकों की रचना संहार तथा पालन करने की सब शक्ति तुम्हारे में विद्यमान है। ऐसी कोई नहीं जो न हो।।7।।

वसिष्ठ उवाच, ''तथा भद्रे करिष्यामि यथा स्यात् सलिलं पुनः। प्रवाहे तव निर्याति सर्वं रक्तं परिक्षयम्।।8।।'' वसिष्ठ जी बोले- हे कल्याणी! मैं वैसे ही करूँगा जैसे पुनः जल हो। तुम्हारे प्रवाह में सब रक्त परम नाश हो जाये।। ''एवमुक्त्वा स विप्रषिपरवर्तीय धरातले। गतः प्लक्षतरूं यस्मादवतीर्णा सरस्वती।।9।।'' ऐसा कहकर वह ब्रह्म ऋषि भूमि तल पर उतरकर उस प्लक्ष वृक्ष के पास गये।।

''समाधिं संधाय निविष्टो धरणीतले। संभ्रवं परमं गत्वा विश्वामित्रस्य चोपरि।।10।। वारूणेन तु मंत्रेण वीक्षयन् वसुधातलम्। ततो निर्भिद्य वसुधां भूरितोयं विनिर्गतम्।।11।। रन्ध्रद्वयेन विप्रेन्द्रा लोचनाभ्यां निरीक्षणात्। एकस्य सलिलं क्षिप्रं यत्र जाता सरस्वती।।12।। प्लक्षमूले ततस्तस्य वेगेनापहृतं बलात्। तद्रक्तं तेन संपूर्णे ततस्तेन महानदी।।13।। द्वितीयस्तु प्रवाहो यः संभ्रमात्तस्य निर्गतः। सा च सांभूमती नाम नदी जाता धरातले।।14।। एवं प्रकृतिमापन्ना भूय एव सरस्वती। यत्पृष्ठोऽस्मि महाभागाः सरस्वत्याः कृते द्विजाः।।15।। एतत्सारस्वतं ना व्याख्यानमतिबुद्धिदम्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि मतिस्तस्य विवर्धते। सरस्वत्याः प्रसादेन सत्यमेतन्म-योदितम्।।16।।'' जिससे सरस्वती नदी का अवतार हुआ। वहाँ समाधि लगाकर विश्वामित्र के ऊपर परम संवेग (क्रोध करके) पृथ्वी के ऊपर बैठ गये।।10।। पुनः वरूणदेवता संबधि मंत्र के उच्चारण सहिततल को देखने लगे। उससे भूमि को भेदन कर बहुत जल निकला।।11।। हे विप्रेन्द्रों! जैसे देखने काल में एक ही अन्तःकरण की वृत्ति दोनों नेत्रों गोलकों से दो रूप धार कर निकलती है। ऐसे ही यह प्लक्षमूल से प्रकट हुई सरस्वती वहाँ शीघ्र एक का ही जल दोनों छिद्रों के द्वारा निकला। उसके पश्चात् उसका वह रक्त उस दूसरी धारा के द्वारा सम्पूर्ण बलपूर्वक अपहरण कर लिया वा वहा दिया। उसके द्वारा महानदी शुद्ध हो गई।।13।। पुनः जो दूसरा प्रवाह उसके संभ्रम (संवेग या भयपूर्वक त्वरा) से निकला। वह पृथिवी पर सांभ्रमती नदी नाम से विख्यात हुई।।14।। इस प्रकार वह सरस्वती नदी पुनः अपने स्वभाव (शुद्धरूप) को प्राप्त हुई। हे महाभाग द्विजों! यही सरस्वती के निमित्त करके आप ने मुझ को पूछा है। यह सारस्वत नामक व्याख्यान अति बुद्धि देने वाला है।।15।। जो इसको श्रद्धा से पाठ करे वा सुने सरस्वती के प्रसाद से उसकी बुद्धि बढ़ जाती है। यह मैने सत्य कहा है।।16।।

''इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्त्रयां संहितायां षष्ठे नागरखण्डे श्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये सरस्वत्युपाख्याने सरस्वतीशाप-मोचनसांभ्रमत्युत्पत्तिवृत्तांतवर्णनं नाम त्रिसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः'' अर्थात् इस प्रकार श्रीस्कन्दपुराण वा इक्यासी सहस्त्र संहिता के छटे नागर खण्ड के अन्तर्गत श्रीहाटकेश्वर क्षेत्र माहात्म्य के सरस्वती उपाख्यान में सरस्वती शाप मोचन और सांभ्रमती की उत्पत्ति वृतांत वर्णन नामक एक सौ त्यहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ।

सरस्वती नदी नवीन परिदृश्य-सक्षिप्त विवरण

आज के समय में विभिन्न वैज्ञानिक तकनीकियों का अविष्कार हुआ है। यह नई वैज्ञानिक विधियाँ विभिन्न क्षेत्रों में लाभप्रद साबित हुई है। इन्हीं विधियों से सरस्वती नदी से सम्बन्धित ज्ञान में भी वृद्धि हुई है। उपग्रहों द्वारा प्राप्त चित्रों से पता लगा है कि राजस्थान, गुजरात एवं हरियाणा प्रदेश में विलुप्त सरस्वती एवं घग्गर नदी की गहराई में जल का विशाल सागर है। इसी सन्दर्भ में हरियाणा सरकार द्वारा भी भूमिगत सरस्वती जल स्त्रोत का उपग्रह की सहायता से अध्ययन किया गया है। हरियाणा सरकार की रपट के अनुसार कुरूक्षेत्र जिला के पेहोवा, थानेसर के समीप ब्रह्म एवं सन्निहित सरोवर, जिला यमुना नगर के मुस्तफाबाद, जिला अम्बाला के मुलाना-बराडा के सरस्वती क्षेत्र में भूमिगत जल की प्रचुर मात्रा पाई गई है। आज के समय में ही पेहोवा क्षेत्र के समीप बहुत सारे जल स्त्रोत है जो सर के नाम प्रचलित हैं। यह स्थान अति पवित्र माना जाता है। यहाँ पर अनादि काल से हिन्दू अपने पूर्वजों का अर्पण तर्पण करते रहे हैं। पूर्वजों का श्राद्ध इस पवित्र स्थान पर करने से पूर्वजों को मुक्ति प्राप्त होती है। यह पवित्र स्थान निश्चित ही सरस्वती धारा के क्षेत्र में है।

यमुना नगर जिले का विलासपुर एवं आद्बद्री स्थान भी सरस्वती नदी का ही क्षेत्र है। विलासपुर शब्द व्यासपुर का अपभ्रंश है। यही वह व्यासपुर है जहाँ पर वेद व्यास जी ने सरस्वती के पावन तट पर चारों वेदों की रचना की थी। यह सर्वविदित सत्य है कि सरस्वती देवी ज्ञान का स्त्रोत है, जिस किसी पर इनकी कृपा हो जाती है, वह परम ज्ञानी महापुरूष हो जाता है। इसी विलासपुर में प्राचीनकालीन सरस्वती की एक और धारा प्रस्फुटित हुई थी और इस प्रागंण को हरा-भरा करती थी। इस

धारा पर एक प्राचीन कालीन पुल भी स्थित है। वर्षों पूव लार्ड कनिगम ने भी अपने लेखों में इस तथ्य को उल्लिखित किया था। भारतीय गजट में लार्ड कनिगम का वर्णन मिलता है।

महाभारत काल में सरस्वती नदी के विलुप्त होने के बाद यह नदी हिमालय एवं शिवालिक पर्वत के प्रागंण में स्थानान्तरण पर भूमि से प्रस्फुटित हुई थी। इसी सन्दर्भ में एक तथ्य यह भी है कि हिमालय पर्वत पर एक और धारा भी सरस्वती के नाम से जानी जाती है। यह धारा थोड़ी दूर बहने के पश्चात् इसी घाटी की भूमि में समायोजित हो जाती है। एक अन्य धारा गुजरात प्रांत में भी सरस्वती के नाम से बहती है। इस धारा का उल्लेख महाभारत काव्य में निश्चित रूप से मिलता है। इस धारा का प्रवाह पश्चिम की ओर है। पश्चिम दिशा की ओर बहने के बाद यह धारा समुद्र में कच्छ की खाड़ी में विलीन हो जाती है। किंवदन्तियों के अनुसार हिमालय पर्वत से तीन धाराएँ यमुना, गंगा, एवं सरस्वती निकलती हुई प्रयाग नामक स्थान पर एकत्रित होती है। इस स्थानको त्रिवेणी कहते हैं। यह स्थान भी प्राचीन अनादि काल का है। प्रयाग में जिस स्थल पर यह तीनों धारायें मिलती है उस स्थान पर तीनों धाराओं की जल मिश्रण प्रक्रिया को सहज रूप से देखा जा सकता है। इस संगम स्थल पर गंगा जी का जल श्वेत वर्ण वाला, यमुना जी का धूम्र वर्ण वाला प्रतीत होता है। सरस्वती का जल विलुप्त होने के कारण यहाँ पर प्रकट नहीं होता है।

प्लक्ष वृक्ष भी सरस्वती नदी से सम्बन्धित है। यह संस्कृत भाषा का शब्द है। संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश में प्लक्ष शब्द के दो अर्थ दिये गये है। एक अर्थ गूलर एवं दूसरा सरस्वती नदी का उद्गम स्थल है। महर्षि मारकण्डेय के आश्रम में भी प्लक्ष प्रजाति का विशाल वृक्ष है। इसी विशाल वृक्ष के मूल से सरस्वती धारा का स्रोत फूट रहा है। यह तथ्य हम पहले भी लिख चुके है। प्लक्ष प्रजाति के फल इनके तनों एवं शाखाओं से ही निकलते हैं। इस वृक्षों पर फूल आदि नहीं लगते हैं। यह इस प्रजाति की विशेषता है। श्री महर्षि मारकण्डेय जी के आश्रम के निकट ऋषि परशुराम की माता रेणुका का आश्रम आज भी है। यहाँ भी गूलर के वृक्ष बहुतायत से मिलते हैं। एक ऐसे प्लक्ष वृक्ष के मूल से जल स्रोत फूट रहा है। इससे ज्ञात होता है कि हिमाचल प्रदेश के नाहन तहसील का यह क्षेत्र ही शास्त्रों में वर्णित प्लक्षप्रस्रवण है

The Huge Fig (Plaksh) Tree At Markandey Ashram

हरियाणा एवं राजस्थान के प्राचीन सरोवरों एवं बावली के जल का रेडियोधर्मिता एवं अन्य वैज्ञानिक विधियों से विश्लेषण किया गया है। इस विश्लेषण से पता लगता है कि यह संचित जल प्राचीन अनादि काल का है। भारत के इस भू-भाग में भयंकर सूखा पड़ने से कोई थोड़ा बहुत प्राचीन जल स्रोत या बावली बच रही होगी, जिसका कि यह जल है जो कि अति प्राचीन है।

GEOGRAPHICAL SOURCE OF THE VEDIC RIVER SARASWATI AND AUTHENTICATION FROM THE SCRIPTURES

नदियों के नामकरण

हमारे देश में यहाँ की नदियों का नामकरण करने की परम्परा विशिष्टता लिये हुए हैं। नदियों का नामकरण महापुरूष, देवी देवताओं, ऋषि मुनियों एवं भौगोलिक स्थान से लिया गया है। उदाहरण के लिये, राजा भागीरथ गंगा जी को पृथ्वी पर लेकर आये थे। अतः इसी नदी को भागीरथी भी कहा गया है। यमुना नदी को यमराज देव की बहन के रूप में जाना जाता है। यमुना का नाम कालिन्दी भी है। यह नदी कालिन्दी पर्वत के समीप से बहती है। एक अन्य नदी जो कि चित्रकूट की पहाड़ियों से निकलकर धीरे-धीरे (मन्द-मन्द) गति से बहती है, इसे मन्दाकिनी कहते है। हिमालय पर्वत से निकलने वाली मंदाकिनी अन्य है। चित्रकूट की पहाड़ियाँ बाँदा जिले में हैं। यही पर ऋषि अत्रि एवं अनुसूया का आश्रम है। इसी चित्रकूट वन में श्री रामचन्द्र जी ने वनवास किया था।

कोई भी बड़ी नदी छोटी-छोटी धाराओं से मिलकर बनती है। गंगा जी की भी तीन धारायें हैं। भगीरथी नदी गोमुख से प्रकट होती है। देवप्रयाग में भगीरथी, अलकनन्दा एवं मन्दाकिनी धारा ये मिलकर गंगा जी को अपना स्वरूप प्रदान करती है। ऋषि वेद व्यास ने विपासा नदी के तट पर घोर तप किया था। अतः इस नदी का नाम व्यास प्रचलित हो गया। बदोदरा जिले में बहने वाली नदी विश्वामित्री कहलाती है। इसका ऋषि विश्वामित्र से अवश्य ही सम्बन्ध रहा होगा।

द्वापर युग में महाभारत के काल में ही सरस्वती नदी में जल की न्यूनता होने के कारण इसका बहाव क्षीण हो गया था। ऋषि मारकण्डेय जी के अथक प्रयास एवं तप के कारण ही इस नदी का पुनर्जन्म इनके पवित्र आश्रम में प्लक्ष वृक्ष के मूल से हुआ। इसी कारण इस नदी का नाम मारकण्डेय नदी पड़ा। ऋषि मारकण्डेय महान तपस्वी थे। वृहदनारदीय पुराण में भी इस धारा के पुनर्जन्म का वर्णन मिलता हैं। जैसा कि पहले भी वर्णन किया गया है, सरस्वती नदी की बहुत सी छोटी-2 धारायें शिवालिक पर्वत से निकलती है। इनका प्रवाह जिला यमुना नगर, अम्बाला एवं कुरूक्षेत्र में है। महाभारत काव्य एवं अन्य पुराणों में सरस्वती नदी के उद्गम के बारे में काफी कुछ वर्णित पाया जाता है। प्राचीन कालीन प्लक्ष वृक्ष मारकण्डेय आश्रम में आज भी विद्यमान हैं इसका विकराल रूप इस बात का प्रमाण है कि यह अति प्राचीन है। इसकी आयु का अनुमान लगाना कठिन है। प्लक्ष (वट) प्रजाति के वृक्ष काफी समय तक जीवित रह जाते हैं। इन वृक्षों से हवाई जड़ें निकलकर हवा में नीचे की ओर लटकी रहती है। कुछ समय पश्चात यह जड़े भूमि में समा जाती है और मूल वृक्ष को पोषण प्रदान करती है। कुछ वर्षों के बाद यही जड़े तनों का रूप धारण कर लेती है और मुख्य वृक्ष को सहारा देती है। कालान्तर में मूल वृक्ष क्षीण हो जाता है। यही जड़ तना बन जाती है। यह प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है और यह वृक्ष अनन्त समय तक खड़ा रह सकता है।

पाठकों से अनुरोध है कि पुराणों में वर्णित इस कथन की पुष्टि ऋषि मारकण्डेय जी के आश्रम में स्वयं पधार कर करें। यह आश्रम कालाअम्ब से पौंटा साहिब जाने वाले मार्ग पर जोगी वन में स्थित है। इसी के समीप प्राचीन आदि बद्री का प्राचीन मन्दिर भी स्थित है। यह स्थान शिवालिक पर्वत माला की भूमि पर है। इसी स्थल के पास हरियाणा सरकार द्वारा सरस्वती नदी का उद्गम स्थल भी चिन्हित किया गया है। इससे थोड़ी दूर पर व्यासपुर (बिलासपुर) कस्बा है। प्राचीन काल में इसी स्थान पर ऋषि वेद व्यास ने पुराणों की रचना की थी। यहां पर एक प्राचीन जलकुण्ड भी है जिसे व्यास कुण्ड कहते है। यह स्थान महाभारत काल का है। इसी स्थान पर महाभारत की समाप्ति पर राजा दुर्योधन आकर छिप गये थे। महाभारत काव्य में इस स्थान को व्यास हृद भी कहा गया है।

पुराणों में देवी सरस्वती का प्लक्ष वृक्ष से प्रकट होने के प्रमाण

ब्रह्मा जी की पुत्री सरस्वती का प्लक्षप्रस्त्रवण में प्लक्ष के मूल से उत्पन्न होने का विवरण वामन पुराण, स्कंद पुराण, वृहन्नारदीय पुराण, पद्म पुराण व महाभारत में मिलता है। ऐसा महामुनी मार्कण्डेय जी के तप के फलस्वरूप हुआ यह भी स्पष्ट है। निम्नलिखित श्लोकों में यह प्रमाण मिलते है :

वामन पुराण में; लोमहर्षण उवाच, ''प्लक्षवृक्षात्समुद्भूता सरिच्छ्रेष्ठा सनातनी। सर्वपापक्षयकरी स्मरणादपि नित्यशः।।3।। सैषा शैलसहस्राणि विदार्य च महानदी। प्रविष्टा पुण्यतोयैषा वनं द्वैतमिति श्रुतम।।4।।'' लोमहर्षण बोले- सरिताओं में श्रेष्ठ तथा सनातनी नदी प्लक्षवृक्ष से (पाकर से)

प्रकट हुई तथा स्मरण मात्र से भी नित्य ही सब पापों को क्षय (नाश) करने वाली है।।3।। वही यह महानदी सहस्रों (हजारों) पर्वतों को विदीर्ण करके यह पवित्र जल वाली द्वैतवन में प्रविष्ट हुई। ऐसा हमने सुना है।।4।।

''तस्मिन प्लक्षे स्थितां दृष्ट्वा मार्कण्डेयो महामुनिः। प्रणिपत्य तदा मूर्ध्ना तुष्टावाथ सरस्वतीम्।।5।।'' उस समय महामुनि मार्कण्डेय ने उस प्लक्ष (पिलखन) वृक्ष में स्थित सरस्वती को देखकर मस्तक से प्रणाम करके स्तुति की।।5।।

''एवं स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वा सरस्वती। प्रत्युवाच महात्मानं मार्कण्डेयं महामुनिम। यत्र त्वं नेष्यसे विप्र तत्र यास्याम्य- तन्द्रिता।।13।।'' जब इस प्रकार स्तुति की तब उस भगवान् विष्णु की जिह्वा रूपी सरस्वती देवी ने महात्मा महामुनि मार्कण्डेय को उत्तर दिया। हे विप्र! जहाँ तुम मुझको ले जाओगे वहाँ मैं आलस्य को त्याग कर जाऊँगी।।13।। (इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये सरस्वतीस्तोत्रं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।32।)

''तत्र देवी ददर्शाथ पुण्यां पापविमोचनीम्। प्लक्षजां ब्रह्मणः पुत्रीं हरिजिह्वा सरस्वतीम।।13।। सुदर्शनस्य जननीं ह्रदं कृत्वा सुविस्तृतम। तस्यास्तज्जलमासाद्य स्नात्वा प्रीतोऽभवन्नृपः।।14।।'' उस वन में प्रवेश करने के अनन्तर वहां पर पापों को नाश करने वाली भगवान हरि की जिह्वा ब्रह्मा जी की पुत्री प्लक्ष (पाकर) से उत्पन्न होने वाली पवित्र सरस्वती देवी को देखा।।13।। जो सुदर्शन की माता है। उसको देखा। पुनः शोभनविस्तार युक्त सरोवर का निर्माण करके और सरस्वती का जल उसमें लाकर तथा स्नान करके राजा प्रसन्नता को प्राप्त हुआ।।14।। (इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये द्वाविंशोऽध्यायः।।22।।)

स्कंद पुराण में बड़वानल नामक अग्नि को देवताओं के अनुरोध पर भगवान् विष्णु ने समुंद्र तक ले जाने लिए सरस्वती को यान (सवारी) रूप बनाया।

''स्वतेजसा द्योतयन्ती सर्वमामासयज्जत्। ततो विसृज्य तां देवी नदी भूत्वा सरस्वती।।40।। हिमवन्तं गिरि प्राप्य प्लक्षातत्र विनिर्गता। अवतीर्णा धरा पृष्ठे मत्स्यकच्छपसकुला।।41।।'' अपने तेज से प्रकाशित होती हुई उसने संपूर्ण जगत को प्रकाशित कर दिया। उसके अनन्तर उस गंगा देवी को त्याग कर स्वयं नदी का रूप धारण कर सरस्वती हिमालय पर्वत पर पहुंच कर वहां प्लक्ष (पाकर) से प्रकट हुई।। 40-41।। (इति स्कन्द म0 पु0 में0 प्रभास खं.(प्र0 क्षे0 मा0 1) 33 में अध्या0 निरूपतम्।।)

वृहन्नारदीय पुराण में; ''रामतीर्थ ततः ख्यातं संजातं पापनाशनम्। मार्कण्डेयेन मुनिना संतप्तं परमं तपः।।7।। यत्र तत्र समायाता प्लक्ष जाता सरस्वती, सा सभाज्य स्तुता तेन मुनिना धार्मिकेण है। सरः सेनिहितं प्लाव्य पश्चिमां प्रस्थिता दिशम्। कुरूणा तु ततः कृष्टं यावत्क्षेत्रं समन्ततः।।'' यहां पर मार्कण्डेय मुनि ने परम तप किया था। वहाँ पर प्लक्ष से उत्पन्न होने वाली सरस्वती आई अर्थात प्रकट हुई। उस धार्मिक मुनि के द्वारा स्तुति (प्रशंसित) वह भी मुनि का सम्मान करके पुनः संनिहित सर को प्लावन (पूर्ण भर) करके पश्चिम दिशा को प्रस्थान किया (चली गयी) तब से यावत्परिमाण (जितने माप) में क्षेत्र था उसको चारों ओर से कुरू ने कर्षण किया।। (इति श्रबृहिन्नारदीयपुराणे उतरभागे कुरूक्षेत्रमाहात्म्ये क्षेत्रप्रमाणादिनिरूपणं)

पद्म पुराण में; ''अधस्तात्प्लक्षवृक्षस्य अवरोप्य च तां तनुम्। अवतीर्णा महाभागा देवानां पश्यतां तदा।।189।।'' उस काल में महाभागा सरस्वती देवताओं के देखते हुए ही अपने देव शरीर को भूमि में घुसा कर पुनः पाकर वृक्ष के नीचे से प्रकट हुई। (इति श्री पाद्मपुराणे प्रथमे सृष्टिखंडे नन्दा प्राची माहात्म्येऽटादशोऽध्यायः।।)

पद्म पुराण व स्कंद पुराण में उस प्लक्ष वृक्ष के पावन स्वरूप की भी व्याख्या मिलती है। ''ततो विसृज्य तान् देवान्नदीभूता सरस्वती।।188।। अधस्ताप्लक्षवृक्षस्य अवरोप्य च तां तनुम्। अवतीर्णा महाभागा देवानां पश्यतां तदा।।189।। विष्णुरूपस्तरुः सोऽत्र सर्वेदेवैस्तु वन्दितः। संसेव्यश्च द्विजैर्नित्यं फलहेतोर्महोदयः।।190।। अनेकशाखाविततश्चतुर्मुख इवापरः।।191।। नदी सरस्वती पुण्या सुलभा जगति स्थिता। दुर्लभा सा कुरुक्षेत्रे प्रभासे पुष्करे तथा।।236।। उसके अनन्तर उन देवताओं को त्याग कर सरस्वती देवी नदी भाव को प्राप्त हो गई।।188।।

उस काल में महाभागा सरस्वती देवताओं के देखते हुए ही अपने देव शरीर को भूमि में घुसा कर पुनः पाकर वृक्ष के नीचे से प्रकट हुई।

इसी स्थान पर साक्षात् विष्णु रूप वह वृक्ष सब देवताओं द्वारा वन्दित (पूजित) तथा द्विजों के द्वारा नित्य ही सेवा करने योग्य और फल के कारण अति उन्नति पर है या प्रभावशाली है ।।191।।

अनेक शाखाओं के द्वारा फैला हुआ चतुर्मुख दूसरे ब्रह्मा जी के समान है। पवित्र सरस्वती नदी जगत् में स्थित होने से जैसे सुलभ है। वैसे वह कुरूक्षेत्र प्रभास क्षेत्र तथा पुष्कर में दुर्लभ भी है ।।236।।

वृक्ष के विस्तृत मुख्य तने व अन्य सहायक तनों को ध्यान से देखने से चार खंड प्रतीत होते हैं। मुख्य विशाल तने अधिकतर खोखले हैं व छोटे बालक खेल खेल में नीचे से प्रवेश कर ऊपर निकल आते हैं। ऐसा ही वर्णन स्कंद पुराण के यह श्लोक करते है।

''उद्भूता सा तदा देवी अधस्ताद्वृक्षमूलतः। तत्कोटरकुटी कोटीप्रविष्टानां द्विजन्तनाम्।।22।। श्रूयन्ते वेदनिर्घोषा सरसारक्तचे- तसाम्। विष्णुरास्ते तत्र देवो देवानां प्रवरो गुरूः।।23।। तस्मात्स्थानात्ततो देवी प्रतीच्याभिमुखं ययौ।।24।।'' उस वृक्ष के कोटर (मध्य में खोखला भाग) रूप कुटी में प्रविष्ट हुए तथा प्रेम से रंगा हुआ चित्त जिनका ऐसे करोड़ संख्यक द्विजों की वेदध्वनियां सुनी जाती है। वहीं पर देवताओं के मुख्य शासक भगवान विष्णु देव विराजते हैं अर्थात् उनका स्थान है।।23।। उस स्थान से वह देवी पश्चिम दिशा को मुख करके चली गई। (इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां षष्ठे नागरखंड श्रीहाटकेश्वरक्षेत्रमाहात्म्ये सरस्वत्युपाख्याने सरस्वती-शापमोचनसांभ्रमत्युत्पतिकृतांतवर्णनं नाम त्रिसप्तत्युत्तरशतृतमोऽध्यायः।।173।।)

महाभारत ग्रंथ में महामुनी वेद व्यास ने युद्ध के समय बलराम जी की सरस्वती के तटवर्ती तीर्थो की यात्रा का उल्लेख किया है। यात्रा सरस्वती के समुद्र संगम से प्रारम्भ करके, देव नदी के उदगम स्थान तक की वर्णित है। यह स्पष्ट वर्णन किया गया है कि शिवालिक पहाड़ियों में पाखड़ वृक्ष की जड़ों से उत्पन्न सरस्वती के जल में स्नान करने के उपरान्त, बलराम जी शीघ्र ही यमुना नदी पर पहुँच गये।

''सौगन्धिकवनं राजन् ततो गच्छेत् मानवः।।4।।'' हे राजन! वहां से मानव सौगन्धक वन को जाए।।4।। ''तद्वनं प्रविशन्नेव सर्वपापैः प्रमुच्यते। ततश्चापि सरिच्छ्रेष्ठा नदीनामुत्तमा नदी।।6।। प्लक्षाधेवी स्रुता राजन् महापुण्या सरस्वती। तत्राभिषेकं कुर्वीत वल्मीकान्निःसृते जले।।7।।'' उस वन में प्रवेश होते ही सब पापों से मुक्त हो जाता है। हे राजन ! उस वन में श्रेष्ठ सरिता और सब नदियों में उत्तम तथा महापवित्र सरस्वती देवी प्लक्ष से टपकती है वहां पर वल्मीक (वरमी) से निकलने वाले जल में स्नान करे।।6-7।। (इति श्रीमहाभारते वनपर्वणि तीर्थयात्रापर्वणि पुलस्तीर्थयात्रायां चतुरशीतितमोध्यायः।।84।। (एवं श्री पा0 पु0 स्व0 खं0 अ0 2, श्लोक 6,7)

The narrative continues describing the visit of Balarama to the region.

''श्रुत्वा ऋषीणां वचनमाश्रम तं जगाम ह। ऋषींस्तानभिवाद्याथ पार्श्वे हिमवतोऽच्युतः।।1।।'' ''संध्या-कार्याणि सर्वाणि निर्वर्त्यारू- रूहऽचलम्। नातिदूरं ततो गत्वा नगं तालध्वजो बली।।10।। पुण्यं तीर्थवरं दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः। प्रभवं च सरस्वत्या प्लक्षप्रस्रवणं बलः।।11।। संप्राप्तः कारपवनं प्रवरं तीर्थमुत्तमम्। हलायुधस्तत्र चापि दत्वा दानं महाबलः।।12।। आप्लुतः सलिले पुण्ये सुशीते विमले शुचौ। संतर्पयामास पितृन् देवांश्च रणदुर्मदः।।13।। तत्रोष्यैकां तु रजनीं यतिभिर्ब्राह्मणैः सह। मित्रावरूणयो पुण्यं जगामाश्रममच्युतः।।14।। इन्द्रोऽग्निरर्यमा चैव यत्र प्राक् प्रीतिमाप्नुवन्। तं देशं कारपवनाद् यमुनायां जगाम ह।।15।। ऋषियों के वचन को सुनकर वह अच्युत हलधर उस आश्रम में गए। जो हिमालय के पार्श्व भाग (वगल) में विद्यमान था। वहां ऋषियों को अभिवादन (प्रणाम) करके सब सन्ध्या कार्यो को निपटाकर तत्पश्चात् पर्वत पर चढ़े। वह ताल वृक्ष के चन्हि युक्त ध्वजा वाले बलवान राम (पर्वत पर अतिदूर न जाकर थोड़ी दूर) वहां से पवित्र श्रेष्ठ तीर्थ को देखकर परम विस्मय (आश्चर्य) को प्राप्त हुए। पुनः जो सरस्वती का उद्गम स्थान तीर्थो में उत्तम तथा कारपवन मुख्य प्लक्ष प्रस्रवण नाम तीर्थ को बलराम संप्राप्त हुए। अर्थात् वहां पहुंच गए।

वहाँ पर भी महाबलवान हल शस्त्र धारी राम ने सरस्वती के पवित्र सुशीत शुद्ध स्वच्छ जल में स्नान किये हुये दान देकर रणदुर्मद बलराम ने देवता और पितरों को तर्पण किया।13। अरू यति (सन्यासी) तथा ब्राह्मणों के सहित अच्युत बलराम एक रात्रि वहां पर निवास करके पुनः मित्र अरू वरूण दोनों ऋषियों के पवित्र आश्रम को चले गये।14। यहाँ पर पूर्व (पहले) इन्द्र, अग्नि, अरू अर्यमा देवता प्रसन्नता को प्राप्त हो चुके थे। कारपवन से यमुना पट्टी में स्थित उस देश (स्थान) को गये।15।। (इति श्री -महाभारते शल्यपर्वणि गदापर्व. बलदेवतीर्थयात्रायां सारस्वतोपाख्याने संक्षिप्तश्चतुपंचाशत्तमोऽध्यायः)

उपर कथित क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति आज भी ऐसी है कि प्लक्षप्रस्रवण और यमुना के बीच का फासला कुछ 15-16 किलोमीटर का ही है। बलराम जी की तीर्थ यात्रा में सूचित तीर्थ स्थान आज भी विराजमान है। तो फिर इस कथन में कोई संशय नहीं रह जाता कि मारकण्डा जी के आश्रम में स्थित पाखड़ से उत्पन्न जलधारा ही देव नदी सरस्वती का उदगम स्थान है।

2010 में प्रकाशित खूबसूरत पुस्तक में माइकेल डेनीनो ने गहन खोज करके यह सिद्ध कर दिया है कि पूर्व काल में सरस्वती नदी उत्तर-पश्चिम भारत में अवश्य बहती थी। नासा (NASA) ने भी उपग्रहों द्वारा प्राप्त जानकारी से इस बात की पुष्टि की है। डेनीनो ने मारकण्डा का ही सरस्वती का प्रारंभिक भाग होने की तीव्र सम्भावना जताई है। श्री ओ.पी. भारद्वाज ने अपने पुस्तक "वैदिक हड़प्पा सभ्यता" में प्लक्षप्रस्रवण का नाहन क्षेत्र में होने का तथ्य पेश किया है। होशियारपुर से साधु सेवा मुंशी राम सूद ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित पुस्तिका "श्री सरस्वती महानदी निर्णय" में परमहंस सरस्वती स्वामी जी ने मारकण्डा का ही सरस्वती होने का विस्तार से उल्लेख किया है।

References

Abrupt weakening of the summer monsoon in northwest India 4100 yr ago. Yama Dixit, David A Hodell and Cameron A Petrie, Geology 24 February 2014.

Holocene Aridification of India. Liviu Giosan, Camilo Ponton, Woods Hole Oceanographic Institution, 15 March 2012.

Encyclopedia Indica, Anmol Publishers. Shyam Singh Shashi, The Tree Cult, pgs 244-246, Chapter 9, 1999.

The Lost River , On the trail of the Sarasvati, Penguin Books, 2010. Michel Danino, pg 64.

पत्रावली संख्या V-34564, पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9, 15-20
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 10 मार्च 2015

साहित्य में आधुनिकता और भारतीयता

डॉ. विभा मेहरोत्रा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *साहित्य में आधुनिकता और भारतीयता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *विभा मेहरोत्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

जबकि सम्पूर्ण विश्व में संवेदनाओं के लुप्त होने की खबर फैल रही है तब उसके बारे में एक लम्बी और खुली बहस का समारम्भ कहीं से भी किया जा सकता है। हमारे यहाँ आधुनिकता के बारे में कोई लबी बहस किये बिना ही उसे परिभाषित करने की जल्दबाजी हुई है। एक लम्बे अकादमिक करने की जल्दबाजी मची हुई है। एक लम्बे अकादमिक डॉयलाग के बिना ही उसके बारे में संवाद-परिसंवाद हुए हैं। आधुनिकता के बारे में न तो हमारे पास कोई अपने सवाल थे और न ही जिज्ञासायें। वो जवाब हमें मिले वे न तो हमारे ही थे और न अधिकांशतः आधुनिकता से ही सम्बद्ध थे। मौलिक प्रश्नों के अभाव में अमौलिक उत्तरों से आधुनिकता की प्रक्रिया, स्वरूप और परिणतियाँ, तथा रुपान्तरण के विविध आयामों के बारे में बहुत ही भ्रांतियाँ फैलती रही है। इस प्रकार हमने स्वयं ही आधुनिकता के बारे में अनेक खतरे भी खड़े किये हैं, प्रत्युत खतरे मोल लिये हैं।

आधुनिकता के बारे में हमारी जो परिभाषायें रही हैं प्रायः वे किसी दर्शन की परिभाषण-प्रक्रिया के विपरीत रही है। स्वरूप-विश्लेषण के बाद जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं, उन्हीं के सन्दर्भ में परिभाषा को रूपायित किया जा सकता है। हमारी परिभाषाओं का यह दोष रहा है। इसे सीमा भी माना जा सकता है। इन मशालों को थाम कर जब आधुनिकता की प्रक्रिया का सफर तय किया गया तो इन मशालों से हाथ भी जले और उन जले हाथों के हाथ प्रायः अंधेरा ही लगा। यही बात और ढंग से भी कही जा सकती है। हमने अंधेरे में टटोल कर पूर्ण हाथी देखने का दावा किया है। हाथी के एक अंग को छूकर ही हाथी जानने का दम भरा गया है। नतीजा यह निकला कि न तो हाथ हाथी को लगा है और न हाथी ही हाथ लगा है।

आधुनिकता के प्रवाह के शुरु-शुरु के कूड़े कचरे को ही आधुनिकता समझने की जो एक बड़ी भूल हो गयी थी, उसे संशोधित करने का भी समय आ गया है, क्योंकि अब प्रवाह का स्वरूप साफ हो गया है।

वस्तुतः यूरोप में युद्धोत्तर चक्राकार संक्रमण-जन्य निर्वात की स्थिति भर चुकी है। वहाँ आधुनिकता एक परिणति थी, मूल्यसंकरता, मूल्यभ्रंशता थी। वहाँ आधुनिक बोध का यह रूप उठ गया है। अब आधुनिकता की एक और परिणति ने

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. बी. एस. महाविद्यालय कानपुर (उ. प्र.) भारत। (आजीवन सदस्य)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

आधुनिक बोध बनकर वहाँ के शून्य को अपनी रचनात्मक क्षमताओं से भर दिया है। आधुनिक बोध का सृजनशील स्वरूप वहाँ के दर्द और व्यर्थताबोध से लोहा ले रहा है, बल्कि अपना लोहा मनवा रहा है।

भारतीय नीति, व्यवहार की मूल प्रवृत्ति सदा ही सारभूत विचार-तत्व को ग्रहण कर उसे अपने साम्प्रतिक संदर्भों में प्रतिष्ठित करने की रही है। न केवल विभिन्न प्रत्युत विरोधी दिशाओं के प्रभाव यहाँ के जीवन-दर्शन में एकात्म होते रहे हैं। ऐसा मानकर चलने से ही आधुनिकता की सही नब्ज पर उंगली रखी जा सकती है और उसकी धड़कन पहिचानी जा सकती है।

हिन्दी साहित्य में पिछले कई वर्षो से आधुनिकता बनाम भारतीयता को लेकर बहुत कुछ कहा गया है। प्रत्युत कहासुनी हुई है। उनसे एक ओर इस प्रश्न की गंभीरता बढ़ी है तो दूसरी ओर कुछेक गंभीर खतरे भी खड़े हो गये हैं।

जो कतिपय प्रमुख प्रश्न अपने बेबाक उत्तर मांगते रहे हैं, वे इस प्रकार हैं- 1. क्या भारतीय संस्कार आधुनिकता-विरोधी हैं?, 2. क्या भारतीय और यूरोपीय सत्य एक है?, 3. क्या भारत का अर्थ सामन्तवादी व्यक्ति और यूरोप का स्वतन्त्र व्यक्ति एक है?, 4. क्या भारत में यूरोप जैसा व्यक्ति-विच्छेदन घटित हो चुका है?, 5. क्या आधुनिकता राष्ट्रीयता से लोहा लेने के बराबर है?, 6. क्या भारत दोनों शिविरों की आधुनिकता अपना सकता है?, 7. क्या भारतीय उखड़े हुए दाँत की खोखला मात्र है?, 8. क्या आधुनिकता की कोई भारतीय परम्परा है?, 9. क्या आधुनिकता जातीय संस्कार हैं?, 10. क्या आधुनिकता प्रतिबद्धता-अप्रतिबद्धता निरपेक्ष है?, 11. क्या भारतीय और यूरोपीय संस्कृति का हिम-बिन्दु एक सा है?, 12. क्या आधुनिकता ईश्वर, धर्म और अध्यात्म को नकारती है?, 13. क्या भारतीय परम्परा आधुनिकता के निए अवरोधक है?, 14. क्या आधुनिकता अतीत और इतिहास-निरपेक्ष प्रत्यय है?

ये हैं वे कुछ प्रश्न जो समय-समय पर फन तानते रहे हैं। एक-एक को अलग-अलग उठाने की अपेक्षा इन्हें एक तर्कसंगत परिचर्चा में समेटना ही अधिक वाजिब होगा। तब एक प्रश्न से जुड़े वैसे ही और प्रश्न भी साफ हो सकते हैं।

साहित्य में आधुनिकता एक अव्याहृत प्रक्रिया है, जिसमें बराबर एक प्रश्नशीलता रहती है और रहता है एक ऐतिहासिक सातत्य भी, जो इसे उसकी तुरन्त तात्कालिकता में आगत और अनागत से सार्थक संपुष्टता प्रदान करता है। इन मान्यताओं के बारे में अब दो राय होने की गुंजाइश नहीं है। यह भी लगभग तय ही है कि आधुनिकता की विभिन्न युगीन परिणतियाँ ही उन गुणों की सापेक्षता में अर्थ पाती हैं और उन युगों के आधुनिक बोध के रूप में स्वीकृति भी पाती है।

आधुनिकता के भारतीय संदर्भ के पहले प्रश्न का उत्तर इन्हीं मान्यताओं के आलोक में ढूंढना होगा इस आलोक में उपर्युक्त फतवा-कि भारतीय आधुनिकता की कोई परम्परा नहीं रही है, स्वतः ही रद्द हो जाता है, और यह स्थापना भी खुद-बखुद बर्खास्त हो जाती है कि यूरोप की आधुनिकता ही भारत की आधुनिकता है और आधुनिकता की कोई परम्परा भी नहीं थी।

यदि प्रश्न चिन्ह की निरन्तरता को आधुनिकता की प्रक्रिया की गतिदायक पक्ष मान लिया जाये तो यह मानना होगा कि भारतीय इतिहास में आधुनिकता की प्रक्रिया बराबर गतिशील रही है। जीवन के असहज, रूढ़, जड़ भ्रीयमाण, रीत चुके, व्यर्थ और व्यतीत हो चुके तत्वों को यहाँ की प्रबुद्ध मनीषा ने न केवल आक्रोशपूर्ण मुद्रा और विद्रोही स्वर में अस्वीकार ही किया है, प्रत्युत विशुद्ध क्रान्तिकारी रोष से उन्हें विस्थापित किया है, और प्रासंगिक तत्वों को स्वीकार किया है। कालान्तर में उनके अनद्यतन पड़ जाने पर निर्ममता और क्रूरता से उनका पूर्ण भंजन किया है।

यहाँ के सम्पूर्ण धार्मिक जातीय और सांस्कृतिक जगत् में व्यक्ति-चिंतन की जितनी खुली छूट रही है, वह आज अत्यधिक आधुनिकता का दम भरने वाले देशों में शायद नाम मात्र को भी नहीं रही है, उनका इतिहास इस बात की गवाही भरता है। यहाँ न तो किसी धर्म-ग्रन्थ को एकमात्र अन्तिम ग्रन्थ घोषित कर स्वतन्त्र चिंतन को अवरुद्ध किया गया है और नहीं किसी व्यक्ति विशेष को अन्तिम व्यक्ति घोषित कर सामान्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के सहज विकास को रुद्ध ही किया गया है। यही कारण है कि यहाँ प्रत्येक युग में स्थापित मूल्यों के खिलाफ जेहाद होता रहा है। उन्हें चुनौती देने वाले को न तो यहाँ अपनी स्लीव स्वयं कंधे पर लादकर अपनी कत्लगाह तक जाना पड़ा है और न स्वयं को ब्रह्म कहने के जुर्म में किसी को मक़तूल में फाँसी के फंदे में झूलना पड़ा है। यहाँ उन्हें ईश्वरत्व मिला है जिन्होंने ईश्वरत्व को नकारा उन्हें भी ईश्वर मान लिया गया है। व्यक्ति के चिंतन-स्वातंत्र्य को ऐसी मिसाल विश्व-इतिहास में सहज सुलभ नहीं। यही आजादी इस बात की तसदीक है कि भारत की अपनी आधुनिकता रही है और यहाँ आधुनिकता की प्रक्रिया बराबर गतिशील रही है तथा उसने प्रत्येक युग के जड़ जीवन-मूल्यों को अस्वीकार किया है।

वैदिक युग में ही व्रात्यमण्डल की स्थापना हो गई थी जो घोर अनीश्वरवादी था। भारतीय आधुनिकता का यह सम्भवतः पहला आंदोलन था जिसने अस्वीकार की मुद्रा में प्रतिष्ठित के जड़ रूप के विरुद्ध सक्रिय विद्रोह किया। इस सम्प्रश्नता के आधुनिकता की प्रक्रिया गतिमान हो उठती है। इसकी पहली परिणति थी नास्तिकता। यही नास्तिकता-बोध उस युग की सापेक्षता में आधुनिक बोध बना। प्रत्येक युग की अपनी-अपनी सापेक्षतायें रहती हैं। अतः एक युग की सापेक्षता में इसलिए पूर्ण स्वीकृति नहीं हो पाती, क्योंकि उस युग की अपनी परिवर्तित सापेक्षतायें रहती हैं। इस प्रकार आधुनिक-बोध तो अपने युग की सापेक्षतायें चूक जाने पर पुराना पड़ जायेगा, परन्तु प्रश्नचिन्ह की निरन्तरता के कारण आधुनिकता की प्रक्रिया बराबर गतिमान रहेगी और प्रत्येक युग की सापेक्षता के अनुरूप परिस्थितियाँ जन्माती रहेगी।

इसी प्रकार भारतीय आधुनिकता की प्रक्रिया बराबर त्वरित रही है और विभिन्न युगों की सापेक्षता के अनुकूल परिस्थितियाँ भी जन्मती रही है। अतः हमारे यहाँ जहाँ आधुनिकता की प्रक्रिया की निरन्तरता है वहाँ आधुनिक बोधों की भी एक लम्बी परम्परा है।

प्रश्न चिन्ह की उपर्युक्त व्रात्य-मण्डल के साथ ही समाप्त नहीं हो जाती, प्रत्युत आगामी युगों में भी वह अपनी अस्मिता साबित करती रही है। अस्वीकृति का उन्मेष, विद्रोह, क्रान्ति, प्रत्याख्यान, निषेध का प्रखर स्वर यहाँ बराबर उठता रहा है। चार्वाक और बृहस्पति की नास्तिकता, युद्ध का निरीश्वरवाद, शंकर और कुमारिल का क्रूर अस्वीकार, गोरख, कबीर, नानक, कम्बन, बेमन्ना, तुलसी, राममोहन, दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस विवेकानन्द, अरविन्द, रमण, गांधी के क्रांतिकारी स्वरों में, उग्र एवं प्रखर प्रहारों में, उनका मात्र आक्रोश, रोष, प्रतिशोध नहीं है, प्रत्युत वह चेतना, जो उनके युगों में आधुनिक बोध बनकर फैली थी, जिसकी रचनात्मक उपलब्धियाँ भी रही है। प्रश्नचिन्हों की उपर्युक्त ऐतिहासिक निरन्तरता में भारतीय आधुनिकता की प्रक्रिया गतिमान रही है और उसकी विभिन्न युगीन परिणतियाँ विविध आधुनिक बोधों के रूप में स्थापित होती रही हैं।

साहित्यिक आधुनिकता का समारंभ ईसाई पौरोहित्य के खिलाफ जहाद के रूप में हुआ था। भारतीय आधुनिकता की धारा 'बुद्ध के कमण्डलु' से अनुस्यूत हुई है। अतः ऐसा कोई भी स्थापना कि भारतीय आध्यात्म और आधुनिकता विरोधी है, भारत की अपनी किसी आधुनिकता की कोई परम्परा नहीं रही है, भारत की समकालीन आधुनिकता, आधुनिक बोध सर्वथा यूरोपीय सम्पर्क की देन है- ये सब न केवल भ्रामक है, प्रत्युत भ्रष्ट एवं एकांगी भी है।

वस्तुतः भारतीय आधुनिकता की प्रक्रिया एवं आधुनिक बोध का अपना एक विशिष्ट सामाजिक राजनैतिक एवं राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक परिवेश रहा है। इसलिए उसका अपना विशिष्ट स्वभाव, मिजाज और प्रकृति है, जो यूरोप की आधुनिकता, आधुनिक बोध से अलग अपनी इयत्ता रखते हैं, क्योंकि यूरोपीय आधुनिक चिंतन का भी अपना विशिष्ट परिवेश रहा है परन्तु यह मानने में भी कोई संकोच नहीं होना चाहिये कि भारतीय आधुनिक चिंतन ने यूरोपीय आधुनिकता सम्बन्धी चिंतन के प्रभूत प्रभाव स्वीकार किये हैं। आज की भारतीय आधुनिकता इन दोनों की सामाजिक इयत्ता लिये हैं परन्तु वे अपने मूल और पारम्परिक विकास में तो अपने मूल से विच्छिन्न हुई है और न ही यूरोपीय प्रभावों के प्रति विरक्त और उनसे असंपृक्त रही है।

इस चर्चा को यहीं छोड़कर अपने मूल प्रश्न की ओर आना चाहूंगी, निश्चित ही साहित्य में आधुनिकता भारतीयता-विरोधी नहीं है बल्कि यूरोपीय आधुनिकता ने वहाँ की जमीन से उखड़कर भारतीय भूमि में अपनी जड़े जमाने की कोशिश की है। उसने यहाँ की जमीन तोड़ी है। वह जनजीवन से जन्म स्वस्थ जीवन दर्शन की अपेक्षा अनेक विकृतियों के रूप में आयातित हुआ है। विचार के वंशवृक्ष के रूप में वह यहाँ कम फैला है और हिन्दी साहित्य की समकालीन मानसिकता से उसका तालमेल प्रक्रियात्मक प्रकार का न होकर प्रायः आरोपित प्रकार का ही रहा है।

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता रही है। उसकी जीवंत परम्परा चली आ रही है। उसकी समकालीन आधुनिकता और आधुनिक बोध का अपना अलग स्वभाव है। भारतीयता को उखड़े हुए दाँत की तरह खोखला करार देना ऐसे ही अज्ञान और बीमार समझ का परिचायक है। भारतीयता यदि उखड़े हुए दाँत की खोखल है तो वह उखड़ा हुआ दाँत कौन है? वह दाँत कहाँ गया? वह दाँत कब से उखड़ा आ रहा था? ऐसे प्रश्नों से ऐसे बीमार चिंतक प्रायः कन्नी काटते रहे हैं।

समकालीन साहित्य पर आधुनिकता को भारतीयता के किन-किन रूपों से टक्कर लेनी पड़ रही है? यह जानने के लिए यह जानना भी अतीव जरूरी है कि भारतीयता से क्या अभिप्राय है? भारतीयता के नाम पर क्या कहीं पर उंगली धरी जा सकती है? इधर भारतीयता को व्याख्यायित करने के लिए काफी कसरत होती रही है। भारतीयता के नाम पर केवल यहाँ की देशव्यापी

अमानुषिकता, ह्रासोन्मुखता, बर्बरता की बात करना संगत नहीं होगा। भारतीयता को निरन्तर भोगी जा रही स्थिति मानना, अथवा उपर्युक्त बोझ तले बराबर दबे जाने का एहसास मात्र मानना भी संगत नहीं। ऐसी ही धारणायें और अधिक व्यापक बनकर सामने आई है। इस दृष्टि से भारतीयता न तो पारिभाषिक स्थिति है और न आध्यात्मिक कल्पना ही। वस्तुतः भारतीयता भारतीय जनगण और समाज का तथा एक वस्तुनिष्ठ का नाम है : वह वृहत्तर यथार्थ का पर्याय है जो अतीव भ्रष्ट होने पर भी भोगा और ढोया जा रहा है। अतीत के अन्धे प्रेतों से आतंकित शव-साधना में गर्क अर्धसामन्तवादी जनमानस का भी भारतीयता का रूप माना गया है, जिस पर शताब्दियों पुरानी अमानुषिक जातीयता और अन्ध-विश्वासों की राख परत दर परत चढ़ी हुई है। साहित्य की भारतीयता में मनु की म्रीयमाण जातीयता सर्वथा त्याज्य है और बुद्ध के कमण्डलु से अनुस्यूत और अव्याहृत गति से प्रवहमान, मानवीय उन्मेष अस्वीकार की विद्रोही चेतना ग्राह्य है, क्योंकि यही आधुनिकता की केन्द्रीय और जीवन्धर प्राण-चेतना है, और प्रत्येक साम्प्रतिकता के महज पर हथियारबन्द हो कर इसे मनु की सम्पूर्ण व्यवस्था से जूझना पड़ा है। आज भी भारतीय परिवेश में मनु और बुद्ध का ही संघर्ष है। दूसरे शब्दों में, आधुनिकता को भारतीयता के पुंसत्वहीन अशिव अंशों से संघर्ष करना पड़ रहा है।

उपर्युक्त धारणाओं में भारतीयता का आशय रहा है भारत की समय धरोहर का, गलित, रूढ़, अशिव, जड़ रूप, जिसकी प्रासंगिकता अपनी समकालीनता में स्वयं को अर्थ दे चुकी है, और अब अमरबेल की तरह जनजीवन के अश्वत्थ की शाखाओं-प्रशाखाओं को आच्छादित कर उनके जीवन-रस का शोषण कर रही है परन्तु इस सब को ही भारतीयता मान लेना उचित नहीं। यह सब गर्हित है और सर्वथा अपनी सर्वांशता में न केवल परित्याज्य ही है प्रत्युत निंद्य भी है।

भारतीयता के ऐसे ही रूप के अतिक्रमण का दबदबा बढ़ा है परन्तु वह गलत दिशा में भटक गया है। उसने भारतीयता के गलित अंश को ही 'भारतीय' कहकर अपने संघर्ष का जहाज चौड़ा कर लिया है और लड़ाई को दुश्मन की गलियों में लड़ने की बजाय दोस्तों के ही घरो-मुहल्लों में लड़ना आरम्भ कर दिया है। इससे युद्ध का पासा भले न पलटा हो, मगर युद्ध का रुख अवश्य ही बदल गया है। परिणाम यह निकला है कि आधुनिकता को सम्पूर्ण भारतीयता का विरोधी मान लिया गया है। आधुनिक बनने के लिए भारतीयता के अतिक्रमण की नितान्त आवश्यकता अनुभव की गई है जो कि सरासर गलत है।

आधुनिकता की यही जंग 'राष्ट्रीयता' को एक पागल उन्माद मानती है, क्योंकि इसी की प्रेरणा से मनुष्य ने मनुष्यता के साथ घोर अमानुषिक और बर्बर व्यवहार किया है। आधुनिकता के शीर्षस्थ व्याख्याताओं ने अपने-अपने देशों की राष्ट्रीयता से लोहा लिया है। बर्टेण्डरसल, सार्त्र, सिमोन, संज्ञान ने राष्ट्रीयता की संकल्पना की धज्जियाँ उड़ाई है। कामू का यह बयान इस प्रसंग में विशेष उल्लेखनीय है- मैं उन थोड़े से सान्द्रभावी फ्रांसीसियों में से हूँ जिन्हें अपने देश पर गर्व नहीं है। भ्रष्ट और झूठी राष्ट्रीयता का ऐसा विशेष एक प्रकार से आधुनिकता की अग्निपरीक्षा है, इधर कामू की नकल में हिन्दी के कुछ अत्यधिक आधुनिकतावादियों ने राष्ट्रीयता के खिलाफ अपने पैगम्बराना फतवे भी दिये हैं। गंगा हिमालय की बात, गौ और भारतीयकरण की बात, जातीय संस्कार और संस्कृति की बात, माँ और मातृभूमि की बात- यह सब 'मिथ्या-राष्ट्रीयता'' है। सच्ची राष्ट्रीयता है वियतनामी, गुरिल्लाओं, अर्पणासेन, चे और नक्सलपंथियों का विद्रोह, क्रांति, अस्वीकार तथा सुशंस अराजकता। जबरदस्ती नसबन्दी की भांति सारे देश का जबरी आधुनिकीकरण करने पर तुले, आधुनिकता के ऐसे पंचों ने, राष्ट्रीयता और संस्कृति के साथ खुलेआम मनमाना दुर्व्यवहार किया है क्योंकि आधुनिकता न केवल अपनी ऐतिहासिक प्रक्रिया में ही प्रत्युत अपनी समग्र चारित्रिकता में जातीय संस्कारों में संगर्भित रहती है। वह समग्र स्थान की सापेक्षता में ही गतिमान होती है तथा विविध परिणतियों को जन्माती है। भारत को आधुनिक होने के लिए किसी भी शिविर में शामिल नहीं होना होगा। यहाँ की आधुनिकता यहाँ की ही विद्रोही मिट्टी से उगेगी। हिमालय की चोटियों से पिघलकर गंगा में बहेंगी। यहाँ के खेतों, खलिहानों में उगेगी यहाँ की हवाओं में उड़ेगी। यहाँ का जनमानस उसी में खुली सांस लेगा। यहाँ का निर्वात और शून्य को बाहर के नकली आडम्बर से झरने की बजाए सार्वभौम राष्ट्रीय परम्पराओं के जीवन्धर और शिव अंशों से भरना होगा और स्वस्थ राष्ट्रीय परिवेश में आधुनिकता को प्रतिष्ठित करना होगा। इस बिन्दु पर आकर आधुनिकता और भारतीयता का विरोध अपने आप मर जाता है।

भारतीय साहित्य में आधुनिकता की असल लड़ाई न तो भारतीयता से और न राष्ट्रीयता से, न परम्परा से है और न प्रयोग से ही। उसका युद्ध-नियुद्ध है भारतीयता के जड़ रूढ़ मृत-अंश से। मगर आधुनिकता यूँ अचानक ही समग्र भारतीयता-

राष्ट्रीयता के विरुद्ध क्यों भड़क उठी है? यह स्थिति भी विचारणीय है। वस्तुतः आज की क्रुद्ध, आकृष्ट भूखी, मूल्यहीन, पीढ़ी ने उस शिद्दत से कुंठा को झेला है, जो अचानक आग बुझ जाने पर शिरा-शिरा, पोर-पोर को शीत हिम बना देती है। यह आग क्यों बुझी? स्वतन्त्रता के बाद नव-रचना की तमाम स्यासी गैर-स्यासी आशायें, विश्वास, आश्वासन एकदम खोखले नारे साबित हुए और स्वतन्त्र भारतीय का औसतन उत्साह ठण्डा पड़ गया। उसने स्वयं को ऐसे घोर नंगे यथार्थ पर खड़े पाया जो आजादी पूर्व यथार्थ से भी कहीं बदतर और भयंकर था। यहीं पर वह आग अचानक बुझने लगती है जिसके सहारे भारतीय जनता ने स्वांतत्र्योत्तर संत्रास की ''पूस की रात'' काटने के लिए मनोबल जुटाया था। परन्तु वह पाता है कि उसकी सामान्य आकांक्षाओं की खेती राजनीतिक गायें चर गई हैं। उधर वह अलाव भी ठण्डा हो गया है। कोयले राख हुए जा रहे हैं। हम राख के लिए अब भी भाग रहे हैं, कभी दक्षिणपंथ में तो कभी वामपंथ में। ऐसे हम कब तक भागते रहेंगे? हमें एक दिन अपने ही उजड़े खेत में पलटना होगा। वहीं नये सपनों की खेती करनी होगी और राजनीतिक नीलगाय के झुण्ड से भी बराबर खबरदार रहना होगा।

यह क्रुद्ध पीढ़ी अंधी भागदौड़ में, जगह-जगह अपने से ही टकरा रही है। अपने ही लोगों के पैर कुचल रही है। अपनों पर ही बेतहाशा टूट रही है। ऐसे में उसका शिकार हो रही है भारतीय परम्परायें।

साहित्य की मध्ययुगीन आधुनिकता-ईसा को दशवीं शती में 17वीं शती तक की आधुनिकता- एक व्यापक परिवेश में सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों की रक्षा, पुनर्प्रतिष्ठा का अभियान, आठ नौ शताब्दियों में फैला चक्रकार-संक्रमण, जिसमें युद्ध-पूर्व आतंक युद्धकालीन विध्वंस-विनाश, युद्धोत्तर संत्रास की तीन समानान्तर धारायें प्रवाहमान रही है, जिसने साहित्य में सम्पूर्ण निर्वाज की स्थिति बनाई है, मूल्य विघटन मूल्यभ्रंशता का विष-संक्रमण फैलाया है, ऐसे चमत्कार संक्रमण में मध्ययुगीन आधुनिकता की प्रक्रिया गतिमान रही है जिसकी मूलचेतना आध्यात्मिक और मानवीय रही है।

मध्ययुगीन साहित्यिक आधुनिकता अपने युग की सांप्रतिकता पर पूर्ण विजयिनी रही है। उसे अधूरे विकलांग समन्वयों की परम्परा, पक्षाघातपूर्ण ऐतिहासिक समझौते कहना आधुनिकता की प्रक्रियता सूझ से पूर्ण अपरिचय माना जायेगा। मध्ययुगीन आधुनिक बोध की तीखी, जलती, सालती मानवीय संवेदना।

वर्तमान साहित्य में आधुनिकता का एक और तेवर पकड़ में आया है। यह उपेक्षित की पैरवी है। हिन्दी साहित्य में आधुनिकता की एक बुनियादी शर्त मान ली गई है- ध्वंस, पतन, विघटन के त्रास पर जीवन को अर्थ देने का प्रयत्न ऊपर से लादे गये आरोपित जीवन मूल्यों के विरुद्ध विद्रोह समकालीन साहित्य में वैज्ञानिक उपलब्धियों के संदर्भ में ये स्वर और भी अधिक विश्वास से उठे हैं, पहले ये एक दुहाई के रूप में उठे थे, अब एक घोषणा के रूप में।

हिन्दी साहित्य की मध्ययुगीन युद्धोत्तरता के प्रथम चरण में ईश्वर के सगुण रूप का निषेध और बराबर निर्गुण प्रचार प्रकारांतर से ईश्वर के सगुण रूप का सम्पूर्ण अस्वीकार है। यूरोप में ईश्वर के अभाव में मानव की सार्थकता सिद्ध करने का जो प्रयास आज आधुनिक-बोध के नाम पर किया जा रहा है, उसकी शुरुआत भारतीय आधुनिकता की प्रक्रिया में बहुत पहले हो चुकी थी। औद्योगिक, प्राविधिक क्रान्ति के बाद जो असंतोष चर्च और मक्के के प्रति तथा जो आक्रोश और संदेह ईश्वर के प्रति यूरोपीय चिंतन में उभरा है वह यहाँ भी किसी न किसी रूप में सगुण और मंदिर तथा ब्राह्मणी पुरोहित्व के विरुद्ध भी उभरा है।

निष्कर्षत

हिन्दी साहित्य में भारतीयता और आधुनिकता के संदर्भ में यह कहना चाहती हूँ कि केवल वर्तमान ही आधुनिकता का सम्पूर्ण संदर्भ नहीं है वरन् वर्तमान साहित्य वर्तमान के प्रति पूर्ण सतर्कता, सजगता के साथ व्यक्ति को इतिहासहीनता को न त्याग कर उसकी स्तरीय चेतना को जीकर ही आधुनिक एवं भारतीय दोनों को प्राप्त करने का संदेश देता है जैसा कि पाश्चात्य आलोचक ने लिखा भी है " The Modern fact of living in the present does not make a man modern, for in that case, everyone at present alive would be so, xxxx (Modern man in search of sout – C.G. Jung).

साहित्य में जहाँ कि समाज मंगल का चिंतन व्यक्ति मंगल के साथ सम्प्रक्त रहता है वहाँ पर आधुनिक संवेदनायें ही आधुनिकता और भारतीयता के विवेक पर आधृत रहती है और साहित्यकार का यह दायित्व भी होता जा रहा है कि व्यापक राष्ट्रीय परिवेश में हिन्दी गद्य या पद्य की रचना करते हुए आधुनिक बोध के स्वस्थ्य एवं तथा अप्रतिपद्ध अंश स्वीकारने चाहिये तभी वर्तमान साहित्य की भारतीय भूमि से प्राणावान सम्पृक्ति संभव

हो पायेगी। भूमण्डलीकरण के दौर में पूँजीवादी प्रतिबद्धता में साम्यवादी प्रतिबद्धता, रचना में उद्देश्य, कर्म एवं कार्य की भी प्रतिबद्धता को दलित विमर्श, स्त्री विमर्श से जोड़ती है और हिन्दी में समाकलीन चिंतन में इसकी विभिन्न भंगिमायें उभरकर रचना की प्रेरणा भी बनी है।

लेखन की स्वतंत्रता के नाम भारतीयता के नाम पर आधुनिक बोध को नकारना एक प्रकार का पलायन ही है, क्योंकि आज के जटिल सामाजिक परिवेश में रचनाकार की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के साथ साथ उस स्वतंत्रता को परीक्षित करने का भी समय है। अतः समग्रतः दायित्व की भावना से लेखकीय प्रतिश्रुतता न केवल वांछनीय है प्रत्युत अनिवार्य भी है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि यदि लेखन पूर्वाग्रह से रहित होता है तो रचना स्वयं ही लेखक को प्रतिश्रुतता प्रदान करती है और ऐसी आधुनिकता भारतीय बोध की स्थिति में भारतीय प्रतिबद्धता के शिलाजीती स्तर को व्यक्त करती है और समकालीन हिन्दी साहित्य का लेखन आधुनिकबोध की दिशा एवं दशा के औचित्य को प्रदर्शित करता हुआ सामने आ रहा है जो अतीत के प्रश्नों को हम करता हुआ निरंतर गतिमान है क्योंकि आज का लेखक भारतीयता को, राष्ट्रीयता को आत्मसात् करने अपने लेखकीय दायित्व के प्रति भी प्रतिबद्ध हो कह रहा है।

लड़ना होगा एक युद्ध हमको अपने से/ सत्य साधना प्रथम चाहती अर्न्तमन्थन/ आत्म शोध के बिना कैसे मिलता है मोती/ आत्म विसर्जन बिना कहाँ संभव है सृजन।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डा0 बच्चन सिंह- *आधुनिक संवेदना और हिन्दी उपन्यास*

डा0 रघुवंश- *आधुनिक बोध संवेदना-परिशोध,* अंक-20

आधुनिकता के तत्व भारतीय विरोधी नहीं, धर्मयुग-1966 नवम्बर

डॉ0 नन्द दुलारे बाजपेई- *आधुनिकता बनाम भारतीयता*

The sprit of Indian Culture – Ed. 1952 Pg. 12

डॉ एस0पी0 सिंह- *टूटे रथचक्रों का सारथी*

रमेश शाह- आधुनिक भाव बोध और भारतीयता

निर्मल वर्मा (सितम्बर-1964)- *खोज की दिशा,* धर्मयुग

निर्मल वर्मा- *बीसवीं शती का केन्द्रीय मानवीय स्थिति* (धर्मयुग)

श्री कमलेश्वर- *कुछ विचार बिन्दु : समकालीन कहानी, दिशा और दृष्टि*

श्री निर्मल वर्मा- *शब्द और स्मृति*

डा0 कैलाश बाजपेयी- *आधुनिक संवेदना परिशोध*

Modern Man in Search of Soul – C.J. Jung

सम्मेलन पत्रिका - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग - 2003

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,21-23
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 08 मार्च 2015

रतन कुमार सांभरिया की कहानियों में व्याप्त दलित संवेदनायें

डॉ. आरती बंसल*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *रतन कुमार सांभरिया की कहानियों में व्याप्त दलित संवेदनायें* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *आरती बंसल* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

दलितों के विषय में लिखित साहित्य को दलित साहित्य कहा जाता है। वैसे तो दलित शब्द कोई नया शब्द नहीं है। सन् 1930 में दलित शब्द का प्रयोग depressed classes के हिन्दी व मराठी अनुवाद के रूप में किया गया था। depressed class में तत्कालीन समय में अंग्रेजों द्वारा उन जातियों के लिए किया जाता था जिन्हें आज हम अनुसूचित जाति की श्रेणी में रखते हैं। परन्तु सन् 1970 में 'दलित पेंथर्स' ने इस शब्द को विस्तृत रूप से व्याख्यायित किया तथा इस शब्द के अन्तर्गत अनुसूचित जनजाति, गरीब किसान, नारी तथा आर्थिक-धार्मिक व सामाजिक रूप से पिछड़े सभी वर्ग के लोगों को परिगणित किया। अतः दलित शब्द किसी जाति विशेष का नहीं बल्कि परिवर्तन और क्रान्ति का प्रतीक है। अतः दलित साहित्य का मुख्य उद्देश्य दलितों को स्वतन्त्र कराना है।

वैसे तो हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल से ही दलितों के शोषण एवं उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज़ उठने लगी थी। कबीर, रैदास, दादूदयाल आदि कवियों ने तत्कालीन जातिभेद की व्यवस्था पर करारे व्यंग्य किए परन्तु फिर भी यह आन्दोलन दलितोत्थान में अधिक सफल नहीं हो पाया। इसका मुख्य कारण यह भी रहा कि इस आन्दोलन में केवल धार्मिक परिप्रेक्ष्य में ही समानता की बात की गई तथा दलितों की संवेदनाओं और पीड़ाओं को व्यापक दृष्टि से उजागर नहीं किया गया। इसका एक मुख्य कारण यह भी रहा कि तत्कालीन समय में धर्म दलितों को शिक्षा की अनुमति नहीं देता था। अतः दलित समाज अपनी अनुभूतियों को लिपिबद्ध करने में असमर्थ रहा।

आधुनिक समय में महात्मा फूले और बाबा राव अम्बेडकर के प्रयासों से महाराष्ट्र में दलित साहित्य प्रकाश में आया। परन्तु 1960 से पहले बाबू राव बागुल, बन्धु माधव, शंकर राव खरात आदि विद्वान भी दलित साहित्य रच रहे थे। इस प्रकार धीरे-धीरे दलित साहित्य समृद्ध होने लगा। दलित साहित्यकार ने अपनी ही जाति की भाषा का प्रयोग किया तथा अपने दबे आक्रोश को समाज में स्थापित किया। गत वर्षों का इतिहास उठाकर देखें तो दलित समुदाय के लोगों की चेतना, आर्थिक विपन्नता,

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सी. एम. के. नेशनल पी. जी. गर्ल्ज़ कॉलेज सिरसा (हरियाणा) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

भौतिक रहन-सहन में अमानवीय दशा, समाज की संवेदनहीनता आदि की खूब चर्चाएँ मिलती हैं। दलित समाज की इसी वेदना को रतन कुमार साम्भरिया ने अपनी ''दलित समाज की कहानियाँ'' में बखूबी चित्रित किया है। उनके कहानी संग्रह ही पहली कहानी 'फुल्ला' की नायिका की भावनाएँ तब चूर-चूर हो जाती हैं जब गाँव का जमींदार उसके घर का पानी पीने से मना कर देता है। जबकि फुल्ला का बेटा अब पढ़-लिख कर अफसर बन चुका है। वह आलीशान बंगले में रहता है। घर में नौकर-चाकर हैं। गाँव का जमींदार जब उसके घर आता है तो वह भूख से बेहाल होता है। परन्तु उसका झूठा जात्याभिमान उसे उसके घर पानी नहीं पीने देता। और वह कह उठता है- फुल्लवा सोने की हो जाए, रहेगी उसी जात की....। मैने तो उसके घर का पानी नहीं पिया। धर्म भ्रष्ट होने से तो मर जाना अच्छा है।

सम्पूर्ण दलित साहित्य में एक बात और जो मुखरित होकर सामने आती है वह यह कि दलितों पर शहरों कि अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में शोषण व अत्याचार अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। गाँव में पानी लेने के लिए अपमान का पात्र बनना दलित के लिए कोई विचित्र बात नहीं थी। प्रेमचन्द की कहानी 'ठाकुर का कुँआ' में जोखू की पत्नी ठाकुर के कुँए से पानी लेने लग जाती है तो जिल्लत के डर के कारण अन्ततः घड़ा भी कुँए पर छोड़कर भाग जाने को मजबूर हो जाती है। वहीं रतन कुमार साम्भरीया की कहानी में फुल्लवा की जात वालों को जमींदारों के कुँए से पानी लेने की आज्ञा नहीं थी। जिस कुँए से वह पानी लाती थी वह घर से आधा कोस दूर था। रामेश्वर कुँए पर नहा रहा था। और वह बार-बार रामेश्वर से गुहार लगा रही थी कि वह दो बालटी पानी उसके घड़े में उडेल दे। परन्तु फुल्लवा का रामेश्वर को उसका नाम लेकर पुकारना अच्छा नहीं लगा और उसने मटके पर थूक दिया। फुल्लवा ने मटका वहीं तोड़ दिया और रोती-रोती घर लौट आई। डा0 अम्बेडकर अपने भाषण में कहा करते थे- गाँव मनुवाद और शोषण की पाठशाला है। दलितों को गाँवों को छोड़कर शहर का रुख करना चाहिए। फुल्लवा कहानी डा0 अम्बेडकर के इस कथन को सही साबित करती है। जो फुल्लवा गाँव में पानी के लिए दुत्कार सह रही थी वही अब शहर में रहने लग गई थी। शहर में उसके घर में नल लगा हुआ था। उसने नल खोला तो नल से गल्ल-गल्ल पानी कूदने लगा।

ग्रामीण अंचल में दलितों को बेगार व बंधुआ मजदूरी का अनवरत शोषण सहना पड़ता है। जमींदारों की घर-हवेली बनानी हो या गाँव में कोई बड़ा भवन, गाँव के दलितों को बिना मेहनताना लिए ही मजदूरी करनी पड़ती है। ''बदन बदना'' कहानी कुछ इसी प्रकार की कहानी है जिसमें प्रेमा अपने पुत्र को बताता है कि गाँव के जमींदार की हवेली पाव भर चना और पाव भर गुड़ की बेगार में ही बनी थी। इसी प्रकार एक हजार रूपये लेने पर रेमा के पुत्र को बंधुआ बन कर रहना पड़ा था। ऐसा नहीं है कि दलितों के विकास के लिए कभी प्रयास न किए गए हों। परन्तु उन प्रयासों और योजनाओं व दलितों के हकों पर तथाकथित समाज के ऊँचे लोग इतनी सफाई से डाका डालते हैं कि किसी को कानोकान खबर भी नहीं होती। 'काल' कहानी इसी बात का वर्णन करती है। गरीबों को काम के बदले अनाज या पैसा देने की योजना का लाभ गरीबों को न मिलकर दूसरे ही लोगों को मिलता है। कहानी का पात्र मिनखू सूखे व अकाल के कारण बेहाल ''अपनी रस्सी कंधे पर धरे, मुंडासा बांधे मिनखू कार्यस्थल पर गया। वहाँ का नजारा देख मिनखू को ताजुब्ब हुआ। रात-रात में इतने नाम मंढ गए। उसे बड़ा अचम्भा हुआ कि चढ़ते सूरज, ऊंचे तबके की वे औरतें भी नाम में काम कर रहीं थी। सूरज उनकी उंगलियाँ भी नहीं देख पाता था। उन औरतों के आदमी इधर-उधर डोलते, गपियाते, हरामखोरी करते, बीड़ी सुट्टाते दिहाड़ी कर रहे थे।'' इतना ही नहीं गांव के दबंग और जमींदार दलितों के घरों व जमीन आदि पर जबरदस्ती कब्जा कर लेते हैं। 'आखेट' कहानी में इस सत्य का भी यथार्थ चित्रण हुआ है। कहानी में गांव का जमींदार नानक सिँह दबंगई से सोना की जमीन हड़प लेता है। वह अपने लठैतों को कहता है, ''उसकी दो बीघा जमीन की मेढ़ मिटा दो। उसके घर में भूसा भर दो।'' गांव में ठाकुर, जमींदार आदि लोग सारी व्यवस्था को अपने इशारों पर चलाते हैं। दलितों की एक और भी बहुत बड़ी विडम्बना साम्भरिया जी की कहानियों में उभर कर सामने आती है। वह यह कि दलित वर्ग जिस हिन्दू धर्म को अपना मानता है उसी धर्म में उनके लिए कोई स्थान नहीं है। 'मुक्ति' कहानी का नायक नानक मन्दिर की मूर्ति स्थापना और महन्त की रथ यात्रा में किसी प्रकार की बाधा को अधर्म मानता है। जब महन्त की रथयात्रा में एक सांड रूकावट डालता है तो वह उस गुस्सैल सांड को हटाने के लिए अपने बेटे चन्दू को मौत के मुँह में झोंक देता है। और इस बात पर गर्व का अनुभव करता है कि मन्दिर के महन्त, मूर्ति और रथयात्रा पर कोई आंच नहीं आई। परन्तु जब नानक मूर्ति को छूने का प्रयास करता है तो महन्त की आँखें जल

उठी थी। घृणा का जिन्न सुरसा के सिर से ज्यादा बड़ा हो गया था।.....महन्त ऊँचे कण्ठ नानक को हड़की मारी- ''अरे ननकीया, मेहतर है तू। झाड़ू वाले हाथ से मूर्ति नहीं छूते।'' नानक राम का सिर मानो आकाश से जा टकराया। पाँव तले ध ारती निकल गई। उसे भयानक चक्कर आया। गिरते-गिरते सम्भला। माथा घूमने लगा। उसकी मुट्ठियाँ तलवार की मूठ पर कसती गई। .....भागते महन्त पर नानक राम ने तलवार लहराई- 'तेरी तो.....।' इस प्रकार नानक को वास्तविकता का आभास हुआ और उसने महन्त का कत्ल कर दिया। इस प्रकार रतन कुमार साम्भरिया की कहानियों में दलितों की सम्वेदनाओं का मार्मिक एवं कारूणिक वर्णन हुआ है।

साम्भरिया जी की कहानियों की एक विशेषता यह भी है कि उनका दलित केवल रोता बिलखता या भाग्य को कोसने वाला दलित नहीं है। बल्कि वक्त के थपेड़े खा-खाकर अब वह जाग्रत हो चुका है। वह शिक्षा के महत्व को समझता है; तथा स्वयं को स्थापित करने के लिए संघर्ष करता है। 'बात' कहानी का पात्र इसी प्रकार का पात्र है। वह मरते समय अपनी पत्नी से कहता है- ''गरीब के लिए पढ़ाई ही उसकी पूंजी होती है। अपना बेटा पढ़ाई में अव्वल है। अफसर बनेगा। कितने कष्ट उठा लेना। राधू के हाथ में किताब रखना। इसी प्रकार 'मेरा घर' कहानी में पिता जब अपनी बेटी को होस्टल में छोड़ता है तो वह उससे कहता है- ''बेटी, जी जान से पढ़ाई कर, पुस्तकें ही तेरा भविष्य है। ये ही तुझे सोपान-सोपान शिखर ले जाएंगे।'' शिक्षा के साथ-साथ दलित यह भी जान चुका है कि उनका पेशा भी उनकी ऐसी हालत के लिए किसी हद तक जिम्मेदार है। इसलिए वह सामूहिक रूप से इन कार्यों को छोड़कर तथाकथित वर्तमान स्थिति से बाहर निकलने का प्रयास करता है। 'बिपर सूदर एक कीनें' कहानी में सब दलित पंचायत करके इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि, ''मेरे जात भाइयो सुनो, अपन जब तक यो धंधा करांगा बदनामी खड़ी रहेगी। सिर ना उठा पवांगा। यो गंदो धंधो छोड़ो, मान-सम्मान से सिर ऊंचो कर के जीओ।'' इसी प्रकार के और भी अनेकों उदाहरण सांभरिया जी की कहानियों में मिलते हैं जो कि दलितों के तिरस्कार की परंपरा को खंडित करते हुए उनमें साहस एवं स्वाभिमान पैदा करते हैं। तथा उनके उज्जवल भवि-य के लिए नए मार्ग प्रस्तुत करते हैं।

संदर्भ सूची

डॉ0 विजय पाल एवं डा0 विवेक कुमार (2014)- *दलित साहित्य का समाजशास्त्र*
रत्न कुमार सांभरिया- *दलित समाज की कहानियाँ*
सर्वेश कुमार मौर्य- *यथार्थवाद और हिन्दी दलित साहित्य*
डॉ0 विवेक कुमार (2002)- *दलित साहित्य का समाजशास्त्र*
डॉ0 कान्ति मोहन- *प्रेमचन्द और दलित विमर्श*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,24-27
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 31 मार्च 2015

महिला संतों की भक्ति भावना

श्याम सुन्दर धाकड़*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *महिला संतों की भक्ति भावना* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *श्याम सुन्दर धाकड़* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

शोधपत्र के उद्देश्य

1. हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन महिला संतों के व्यक्तित्व और कृतित्व को जानना एवं अन्य शोधार्थियों को उपलब्ध कराना।
2. महिला संतों के बारे में उल्लेखित तथ्यों का परीक्षण करना।
3. महिला संतों के जीवन इतिहास को जानना एवं उनके जीवन इतिहास से वर्तमान समाज को प्रेरित करना।

शोध विधि : ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक शोध विधि।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लगभग 1000 वर्षों के हिन्दी साहित्य के इतिहास में संवत् 1375 से 1700 तक के काल को *भक्तिकाल* नाम दिया है। इस युग को हिन्दी साहित्य का *स्वर्ण युग* भी कहा जाता है। इस काल में अनेक संत हुए हैं। जिनमें प्रमुख रुप से कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, रैदास, धर्मदास, गुरुनानक, मीराबाई, आदि उल्लेखनीय हैं।

उपरोक्त सभी संतों ने अपनी वाणी एवं लेखन के माध्यम से ईश्वर भक्ति का मार्ग बताया, आदर्श जीवन जीने के लिए प्रेरित किया। ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग और कर्ममार्ग द्वारा अपनी भक्तिभावना से जनसाधारण को परिचित कराया एवं आत्मोन्नति का मार्ग सुझाया।

प्रस्तुत शोधपत्र में महाराष्ट्र की महिला संत रुक्मणी बाई, जनाबाई एवं कान्हूपात्रा की भक्तिभावना का विस्तार से उल्लेख किया गया है।

* शोधार्थी, हिन्दी सा., अटल बिहारी बाजपेयी हिन्दी वि. वि. भोपाल (मध्य प्रदेश) भारत। E-mail : sundardhakar@gmail.com

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

1. संत रुक्मणी बाई

बिट्ठलपंत बचपन से बैरागी थे। उन्हे भजन-पूजन और तीर्थ यात्रा में अत्याधिक रुचि थी। ये तीर्थ यात्रा करते हुए आलंदी ग्राम पहुँचे। यहाँ पर सिधोपंत नाम के एक ब्राह्मण रहते थे। वे बिट्ठलपंत के ज्ञान, वैराग्य और तेज को देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने अपनी बेटी रुक्मणी का विवाह बिट्ठलपंत से कर दिया। विवाहोपरांत दोनों पति-पत्नि ने अनेक तीर्थों की यात्रा की। इसके पश्चात् ये अपने ग्राम आपेगाँव लौटे। कुछ समय पश्चात् बिट्ठलपंत के माता-पिता की मृत्यु हो गई तब स्वसुर सिंधोपंत के आग्रह पर दोनों पति-पत्नि पुनः आलंदी पहुँचकर रहने लगे। बिट्ठलपंत अत्यधिक आध्यात्मिक थे। उन्हें गृहस्थ आश्रम में रहना अत्यधिक कठिन लगने लगा। परंतु पत्नि की अनुमति के बिना वे सन्यास ग्रहण नहीं कर सकते थे। और इस प्रकार तीर्थ यात्रा में जाने के लिए पत्नि से अनुमति लेने के अवसर में थे। एक दिन रुक्मणी घर के कामकाज में व्यस्त थी। बिट्ठलपंत ने अवसर पाकर गंगा स्नान के लिए अपनी पत्नि से अनुमति चाही और रुक्मणी ने सहज भाव से अनुमति दे दी। परंतु बिट्ठलपंत अनुमति पाते ही सीधे काशी जा पहुँचे। वहाँ श्रीपाद स्वामी की शरण में पहुँचकर सन्यास दीक्षा लेकर चैतन्यआश्रम के स्वामी बनकर बैठ गए। इधर रुक्मणी देवी पति के विरह से अत्याधिक दुःखी एवं व्याकुल रहने लगी।

कुछ दिन बीत जाने के बाद श्रीपाद स्वामी यात्रा करते हुए आलंदी पहुँचे। तब अन्य दर्शनार्थियों के साथ रुक्मणी देवी भी श्रीपाद स्वामी के दर्शन करने के लिए गई, एवं प्रणाम किया। स्वामी जी ने रुक्मणी को पुत्रवती एवं सौभाग्यवती होने का अशीर्वाद दिया। रुक्मणी आशीर्वचन सुनकर हँस पड़ी। स्वामी जी ने रुक्मणी से हँसने का कारण पूछा। उन्होंने अपने पति के सन्यासी होने की घटना सुनाई। श्रीपाद स्वामीजी ने काशी लौटने के पश्चात् बिट्ठलपंत को समझाया एवं आदेश दिया कि, वो घर जाकर पुनः गृहस्थ आश्रम का निर्वाह करें। यद्यपि यह कार्य शास्त्रों के विरुद्ध है किंतु ईश्वर तुम्हारी मदद करेंगे। बिट्ठलपंत को ऐसा आश्वासन श्रीपाद स्वामी जी ने दिया।

बिट्ठलपंत अपने गुरु के समझाने पर एवं उनके आदेशानुसार घर आए और पत्नि रुक्मणी के साथ गृहस्थ आश्रम जीवन पुनः प्रारंभ कर दिया। परंतु इनका यह कार्य शास्त्रों के विरुद्ध होने के कारण घर-परिवार व समाज के लोगों ने इनका वहिष्कार कर दिया। इस प्रकार गुरु आज्ञा का पालन करते हुए इस दंपत्ति से दो-दो वर्ष के अंतराल में चार संतानों का जन्म हुआ। जिनके नाम इस प्रकार हैं- निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपान और मुक्ता। निवृत्तिनाथ की उम्र सात वर्ष होने के पश्चात् उपनयन संस्कार के लिए बिट्ठलपंत अनेक शास्त्र विशेषज्ञों के पास गए। किंतु शास्त्रों के नियम विरुद्ध उत्पन्न संतान के उपनयन संस्कार संपन्न करने के लिए कोई विद्वान तैयार नहीं हुआ। तब बिट्ठलपंत अपने परिवार सहित त्र्यंबकेश्वर गए। वहाँ पर उन्होंने एक अनुष्ठान प्रारंभ किया। बिट्ठलपंत मध्यरात्रि में कुशावर्त तीर्थ में स्नान करते और ब्रह्मगिरि की परिक्रमा करते थे। इसी प्रकार परिक्रमा करते हुए एक दिन बाघ का सामना होने पर निवृत्तिनाथ अपने पिता से बिछुड़कर, रास्ता भूलकर श्री गैनीनाथ नामक संत की गुफा में पहुँच गए। वहाँ पर श्री गैनीनाथ ने इन पर कृपा की और बताया कि, बिट्ठलपंत ने सन्यास आश्रम ग्रहण करके पुनः गृहस्थ आश्रम में प्रवेश किया इस पाप का एक ही प्रायश्चित है, देह त्याग। अतः बिट्ठलपंत इतने महान संत थे कि छोटे-छोटे चार बच्चों के मोह उन्हें नहीं सताया। और देह त्यागने के लिए वे सहर्ष तैयार हो गए।

रुक्मणी भी संत गुणों से परिपूर्ण थी। दोनों पति-पत्नि ने शास्त्रों की मर्यादाओं के पालन तथा अपनी संतानों के कल्याणार्थ प्रयागराज त्रिवेणी संगम में जलसमाधी का मन बना लिया। परंतु रुक्मणी अपने बच्चों के पालन-पोषण की चिंता से दुःखी होकर रो पड़ीं। तभी वहाँ एक सिद्ध पुरुष प्रकट हुए जिन्होंने सांत्वना देते हुए रुक्मणी को समझाया कि, तुम्हारे ये बालक कोई सामान्य बालक नहीं हैं। शांति और धैर्य से इन्हे पहचानों। निवृत्तिनाथ भगवान शंकर के अवतार हैं, ज्ञानदेव भगवान विष्णु के अवतार, सौपान ब्रह्मदेव के अवतार हैं और मुक्ता, आदिमाया का रुप हैं। इस प्रकार उन सिद्ध महापुरुष के समझाने से रुक्मणी को शांति मिली। उन्होंने अपने चारों बच्चों को उन सिद्ध महापुरुष को सौंपकर दोनों पति-पत्नि ने प्रयाग त्रिवेणी जलसंगम में जल समाधी ले ली।

जैसा कि शास्त्रों में संतों के लक्षणों के बारे में उल्लिखित है कि, संत संसार में आकर भी माया मोह से निर्लिप्त होते हैं। शास्त्रों के पालन के लिए राष्ट्र कल्याण के लिए अपना बलिदान करते हैं। संत बिट्ठलपंत और देवी रुक्मणी ने संत धर्म का अक्षरसः पालन किया।

2. संत जनाबाई

जनाबाई श्री संत नामदेव के घर में काम करने वाली दासी थीं। जनाबाई का जन्म गोदावरी के पास गंगखेड़ नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम दामाशेट और माता का करुंड था। इनकी माता की मृत्यु इनके बचपन काल में ही हो गई थी। पिता धार्मिक वृत्ति के थे। जब वो तीर्थ यात्रा के लिए पंढ़रपुर गए तब वो अपनी पुत्री जनाबाई को साथ ले गए। पंढ़रपुर के भक्तियुक्त वातावरण से जनाबाई अत्यधिक प्रभावित हुईं एवं पंढ़रपुर में रहने का अपना मन बना लिया। पिता ने पुत्री की भगवान् स्मरण में दृढ़ इच्छा को देखते हुए संत नामदेव के पिता दामाशेट के घर काम काज करने के लिए छोड़ दिया। संत नामदेव के घर के सभी सदस्य अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्ति के थे। संत नामदेव का घर पंढ़रपुर में बिट्ठल मंदिर के सामने ही था। जनाबाई घर का काम-काज निबटाकर सामने मंदिर में जाकर भगवान का दर्शन करतीं, नित्य गीता ज्ञानेश्वरी का पाठ करतीं और सदा भगवान के ध्यान में लीन रहती थीं। इस प्रकार जनाबाई अपने काम-काज के साथ-साथ भगवान के भजन में आनंदमय जीवन व्यतीत करने लगी। परंतु एक दिन भगवान के गले का रत्न पदक चोरी हो गया। मंदिर के पुजारियों ने जनाबाई को निर्धन समझकर उन पर चोरी का आरोप लगाया। जनाबाई ने भगवान की शपथ लेकर लोगों को विश्वास दिलाया कि, उसने रत्न पदक नहीं चुराया।

पुजारियों ने जनाबाई को ही दोषी ठहराते हुए सजा देने के लिए सूली पर चढ़ाने का निर्णय लिया और इस उद्देश्य से जनाबाई को चन्द्रभागा तट पर ले गए। जनाबाई ने विकल होकर सूली की ओर देखा और भगवान से अपने निरपराध होने की करुण स्वर में गुहार लगाई। तब देखते ही देखते सूली पिघलकर पानी हो गई। यह दृश्य देखकर लोगों को विश्वास हुआ कि, जनाबाई निरपराध हैं, और भगवान की सच्ची भक्त हैं। कहते हैं कि जनाबाई के साथ भगवान बिट्ठल पानी भरते थे, आटा पीसते थे, रसोई बनवाते थे। जनाबाई निरक्षर, निर्धन और निम्न वर्ग की होते हुए भी उच्च कोटि की महिला संत थीं।

संत जनाबाई के तीन सौ अभंग (रचनाएँ) मिलते हैं। जिनमें कहीं सगुण रुप का ध्यान है तो कहीं त्रिकूट, श्रीहाट, श्यामवर्ण गोह्लाट, नीलबिन्दु और पीठ, भ्रमरगुहा और दशमद्वारका, स्वानुभूत सांकेतिक वर्णन है, कहीं निर्गुण निराकार है और कहीं पर प्रेम का परम माधुर्य है। जनाबाई की मृत्यु, संत नामदेव (कबीर से 130 वर्ष पूर्व 1270-1350) की मृत्यु के तुरंत बाद हुई थी।

3. संत कान्हूपात्रा

कान्हूपात्रा मंगलवेढ़ा स्थान में रहने वाली श्यामानाम्नी वेश्या की पुत्री थीं। माँ की वेश्यावृत्ति देखकर उसे ऐसे जीवन से घृणा हो गई थी। कान्हूपात्रा ने पन्द्रह वर्ष की कम उम्र में ही यह निर्णय ले लिया था कि, वह अपनी माँ के पेशे को नहीं अपनाएगी। किंतु वह नृत्य और गायन कला में निपुण थी। उसकी माता ने भी उसे आश्वस्त कर दिया था कि, वह वैश्या का धन्धा न करे। पर किसी एक पुरुष से विवाह कर गृहस्थ जीवन यापन करे।

कान्हूपात्रा अत्यन्त सुन्दर थी। कई लंपट पुरुष उसे हर तरह से बहला-फुसलाकर भोगने का प्रयास करते रहते थे। परंतु जैसा कहते हैं कि, भक्तो की रक्षा भगवान स्वयं करते हैं। कान्हूपात्रा भी अपनी भक्तिभावना के कारण अपने आराध्य भगवान द्वारा सुरक्षित रही। कुछ समय पश्चात् कान्हूपात्रा श्री पंढ़रीनाथ के दर्शन के लिए पंढ़रपुर गईं और दर्शन कर संत मीरा की भाँति भगवान श्रीपंढ़रीनाथ का वरण कर, दासी बनकर सदा के लिए वहीं रह गई।

कान्हूपात्रा के सौन्दर्य की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। बेदर के बादशाह भी कान्हूपात्रा के सौन्दर्य से प्रभावित होकर उसे अपने हरम में लाने के लिए सिपाही भेजे। सिपाहियों को यह आदेश भी दिया गया था कि कान्हूपात्रा स्वेच्छा से आने के लिए तैयार न हो तो उसे जबरन उठाकर लाया जाए। सिपाही पंढ़रपुर पहुँचे और कान्हूपात्रा को ले जाने लगे तब कान्हूपात्रा ने सिपाहियों से निवेदन किया कि, एक बार उसे भगवान के दर्शन करने की अनुमति दें। अनुमति मिलने पर कान्हूपात्रा ने मंदिर में प्रवेश किया। भगवान के दर्शन करते हुए रक्षा करने की प्रार्थना की। कहा जाता है कि, कान्हूपात्रा श्रीबिट्ठल भगवान से प्रार्थना करते हुए अचेत होकर मूर्ति के चरणों में गिर पड़ी। उसकी देह से एक ज्योति निकली और वह ज्योति भगवान की

ज्योति में मिल गई। बाद में कान्हूपात्रा की अस्थियों को मंदिर के दक्षिणी द्वार में गाड़ दिया गया। मंदिर के समीप ही कान्हूपात्रा की मूर्ति आज भी खड़ी-खड़ी पतितों को पावन कर रही है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि, भारत संतों का देश है। भक्तिकाल में भक्तों के ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं। हमारी भारतीय संस्कृति, दर्शन उच्च कोटि के हैं किंतु इस भौतिकवादी युग में हमारी भावी युवा पीढ़ी भ्रमित होकर, दिशाविहीन हो रही है। अतः इस प्रकार शोध के माध्यम से हम अपने सांस्कृतिक एवं दर्शनिक मूल्यों से आने वाली पीढ़ी को अवगत करा सकते हैं।

संदर्भ

आचार्य रामचंद्र शुक्ल -हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रकाशक कमल प्रकाशक नयी दिल्ली-110002

कल्याण 627, संत अंक, बारहवें अंक का विशेषांक, गीताप्रेस गोरखपुर।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,28-33
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 09 अप्रैल 2015

सिद्ध साहित्य

डॉ. रमेश टण्डन*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *सिद्ध साहित्य* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *रमेश टण्डन* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

सिद्धों ने बौद्ध धर्म के वज्रयान तत्त्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य जनभाषा में लिखा, वह हिन्दी के सिद्ध-साहित्य की सीमा में आता है। राहुल सांकृत्यायन ने 84 सिद्धों के नामों का उल्लेख किया है। इनमें सरहपा प्रथम हैं, इनका कार्यकाल 769 ई0 है। ये नारी भोग में विश्वास करते थे। इन सिद्धों में विशेष बात यह थी कि वे ईश्वरवाद की ओर अग्रसर हो रहे थे। इन्होंने गृहस्थ जीवन पर बल दिया। इनके लिए स्त्री का सेवन संसार रूपी विष से बचने के लिए था। जीवन के स्वाभाविक भोगों में प्रवृत्ति के कारण सिद्ध साहित्य में भोग में निर्वाण की भावना मिलती है। सिद्धों की काव्य कृतियों में प्रधान रूप से नैराष्य भावना, कायायोग, सहज शून्य की साधना और भिन्न-भिन्न प्रकार की समाधिजन्य दशाओं का चित्रण किया गया है। पर यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि सिद्ध साहित्य में शताब्दियों से आने वाली धार्मिक और सांस्कृतिक विचार धारा का स्पष्ट उल्लेख है तथा इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसके द्वारा धार्मिक शृंखला और भी दृढ़ हो गई है।

कूट शब्द : ''सिद्ध साहित्य में भोग में निर्वाण की भावना''

483 ई0 पू0 में बुद्ध का निर्वाण हुआ। इसके 45 वर्ष पश्चात् तक बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का खूब प्रचार हुआ। सहानुभूति और सदाचार के मूल तत्त्वों पर आधारित बौद्ध धर्म का उदय वैदिक कर्मकाण्ड की जटिलता एवं हिंसा के प्रतिक्रिया- रूप में हुआ। ''वैदिक कर्म-काण्ड की जटिलता और हिंसा की प्रतिक्रिया में, सहानुभूति और सदाचार द्वारा आत्मवाद के विनाश से तृष्णा और दुःखरहित निर्वाण की प्राप्ति करना ही बौद्ध धर्म का आदर्श रहा।''(वर्मा,1964, पृष्ठ 51) ईसा की पहली शताब्दी के लगभग बौद्ध सम्प्रदाय दो खण्डों महायान और हीनयान में विभक्त हुआ। हीनयानी छोटे रथ के आरोही थे और महायानी बड़े रथ के। हीनयान शब्द का प्रयोग महायान सम्प्रदाय वालों की ओर से व्यंग्यात्मक रूप से हुआ। महायान में लोक-भावना का मेल इतना अधिक हो गया कि निर्वाण के लिए सन्यास और विरक्ति के पर्याय लोक-कल्याण और आचार की पवित्रता प्रधान हो गई तथा वह वर्ग-भेद से उठकर एक सार्वजनिक धर्म बन गया। इसमें ऊँचे-नीचे, छोटे-बड़े, गृहस्थी, सन्यासी सबको

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय [खरसिया] रायगढ़ (छत्तीसगढ़) भारत। E-mail : rameshktandan@gmail.com

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

निर्वाण का मार्ग दिखाने का दावा किया गया। जबकि हीनयान केवल विरक्तों और सन्यासियों को आश्रय देता था। इसमें ज्ञानार्जन, पाण्डित्य और व्रतादि की कठिन मर्यादा बनी रही। बौद्ध धर्म का चिन्तन पक्ष हीनयान में रहा और व्यावहारिक पक्ष महायान में। जो धर्म वैदिक कर्मकाण्ड की उलझनों की प्रतिक्रिया में उठा था, वही समाधि, तन्त्र-मन्त्र, डाकिनी-शाकिनी, भैरवी-चक्र, मद्य-मैथुन में उलझ गया और सदाचार से हाथ धो बैठा। जिस धर्म ने ईश्वर का अस्तित्व तक स्वीकार नहीं किया था, कालान्तर में उसी में बुद्ध की भगवान के रूप में पूजा होने लगी और आगे चलकर तन्त्र ने इस धर्म को अपनी मूल दिशा से एकदम नई राह में मोड़ दिया। अब इसमें त्याग और संयम का स्थान भोग और सुख ने ले लिया। निवृत्ति परायण धर्म में प्रवृत्ति प्रबल हुई और साधक ''सर्वतथागतात्मकोऽह'' जैसे मन्त्रों को जप कर अपने आपको बुद्ध समझने लगा। इस प्रकार महायान की सुगम साधना मन्त्रयान के रूप में परिवर्तित हुई। इसमें इनकी अनुयायियों को यह विश्वास हो गया कि अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए मन्त्रों की नियमित साधना आवश्यक है। साधनाओं के विविध प्रयत्नों द्वारा धन संग्रह की ओर ध्यान दिया गया, फलस्वरूप उनमें विलासिता की प्रवृत्तियाँ भी उदय होने लगीं। इस प्रकार मन्त्रयान के विकास के रूप में 'भैरवी चक्र' ने सदाचार की अवहेलना की और 'वज्रयान' का अभ्युदय हुआ। ''सिद्धों ने बौद्ध-धर्म के वज्रयान तत्त्व का प्रचार करने के लिए जो साहित्य जन-भाषा में लिखा, वह हिन्दी के सिद्ध- साहित्य की सीमा में आता है।''(नगेन्द्र,1988, पृष्ठ 79) ऐसे बौद्ध साधक जो मन्त्रों द्वारा सिद्धि प्राप्त करने में विश्वास करते थे, सिद्ध कहलाये।

वज्रयानी परम्परा को लेकर सिद्ध कवियों ने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इन सिद्धों में विशेष बात यह थी कि वे ईश्वरवाद की ओर अग्रसर हो रहे थे। इन्होंने गृहस्थ जीवन पर बल दिया। इनके लिए स्त्री का सेवन संसार रूपी विष से बचने के लिए था। जीवन के स्वाभाविक भोगों में प्रवृत्ति के कारण सिद्ध साहित्य में भोग में निर्वाण की भावना मिलती है। जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों में विश्वास के कारण सिद्धों का सिद्धान्त पक्ष सहज मार्ग कहलाया। सिद्ध कवियों ने जिस स्वाभाविक धर्म और आचार का प्रतिपादन किया, वह वज्रयान के सिद्धान्तों से भिन्न था। निरीश्वरवादी बौद्ध धर्म के क्रोड़ में पल्लवित होने वाले महायान, मंत्रयान और वज्रयान से सम्बन्ध-विच्छेद करते हुए ये सिद्ध किसी 'धर्म महासुख' की ओर अग्रसर हुए जिसमें ईश्वरवाद का प्रतिफलन होता था। शुक्ल जी ने लिखा है कि ''बौद्ध धर्म ने जब तान्त्रिक रूप धारण किया, तब उसमें से पाँच ध्यानी बुद्धा और उनकी शक्तियों के अतिरिक्त अनेक बोधिसत्वों की भावना की गयी जो सृष्टि का परिचालन करते हैं। वज्रयान में आकर 'महासुखवाद' का प्रवर्तन हुआ। प्रज्ञा और उपाय के योग से इस महासुख दशा की प्राप्ति मानी गयी। इसे आनन्दस्वरूप ईश्वरत्व ही समझिए।''(शुक्ल,2003, पृष्ठ 28) ''जब तक वज्रयान का केन्द्र श्रीपर्वत पर रहा तब तक तंत्र, मंत्र और अभिचार में माँस, मदिरा और मैथुन का प्रयोग होता रहा, क्योंकि सहजचर्या के लिए ये वस्तुएँ आवश्यक समझी जाती थीं। किन्तु जब वह केन्द्र श्रीपर्वत से नालन्दा और विक्रमशिला में आया तब वज्रयान की सहजचर्या में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ और मद्य, स्त्री आदि का व्यवहार वज्रयान की सिद्धि में आवश्यक नहीं रह गया।''(वर्मा,1964, पृश्ठ 55-56) सिद्धों ने वज्रयान को वहीं तक स्वीकार किया है जहाँ तक वह सदाचार के विरोध में नहीं खड़ा होता। जीवन के स्वाभाविक भोगों में प्रवृत्त होने की सहमति सिद्धों से अवश्य मिलती है और वह इसलिए कि जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का दमन करने से साधना के निर्वाह में बाधा पड़ती है। इसीलिए भोग में निर्वाण की भावना सिद्ध-साहित्य में देखने को मिलती है। जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों में विश्वास रखने के कारण ही सिद्धों का सिद्धान्त सहज-मार्ग कहलाता है।

आठवीं शताब्दी में जब बौद्ध धर्म का पतन आरम्भ हुआ तब बंगाल के पालवंश में अकेला राजा बचा था जो बौद्धों को आश्रय दे रखा था। उन दिनों बौद्धों का जनाधार खिसक रहा था इसलिए उन्होंने धर्म को तन्त्र-मन्त्र, सम्मोहन और उच्चाटन से जोड़कर जनता में अपनी पहचान बनाने की कोशिश की, लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि वास्तविक धर्म की जगह आडम्बर अधिक प्रबल होकर जनता में फैलने लगा। धर्म का दूसरा नाम चमत्कार और आडम्बर हो गया। तभी बौद्ध धर्म की एक प्रशाखा के रूप में सिद्धों का आविर्भाव हुआ और सबसे पहले सरहपा (सरहपाद) ने उन चुनौतियों को स्वीकार किया जो बौद्ध धर्म के पतन का कारण बनीं और जिनसे लड़ने की आवश्यकता उन्हें थी। यही समय था जब शंकर, कुमारिल और उदयन ने बौद्ध धर्म के विरोध में जाकर ब्राह्मण धर्म की श्रेष्ठता और अनिवार्यता की स्थापना करने में अपनी सारी शक्ति और प्रतिभा लगा दी। सिद्धों को एक ओर बौद्ध धर्म के चमत्कारवाद से लड़ना था तो दूसरी ओर ब्राह्मणवाद से लड़ना था। इसलिए उन्होंने अपनी पहचान बनाने के लिए जनता के बीच जाना उचित समझा। निम्नवर्ग एवं निम्नवर्ण की औरतों के संसर्ग से साधना करने

की आवश्यकता प्रतिपादित की। ''स्वयं सरहपाद ब्राह्मण थे। उनका असली नाम राहुलभद्र था, लेकिन 'शर' बनाने वाली औरत के साथ रहने के कारण उन्होंने अपना नाम सरहपा कर लिया। आगे चलकर सिद्धों में निम्न जातियों से अधिकतर लोग आये। जो उच्च वर्ग से आये, उन्होंने नीची जातियों की औरतों से विवाह करके अपने को वर्णच्युत किया।''(पालीवाल,2002, पृष्ठ 101) यह एक नये प्रकार का आन्दोलन था, जिसने नीची समझी जाने वाली जातियों में अपना स्थान बनाया और उनमें यह विश्वास पैदा किया कि यदि ऊँची जातियाँ आपको नहीं मानती तो हमारे साथ रहकर उनके विरोध में साधना करके मोक्ष पाया जा सकता है। यह आश्चर्यजनक स्थिति थी जिसने ब्राह्मणवाद पर करारा प्रहार किया, लेकिन मैथुन की अनिवार्यता को साधना में स्थान देकर अपने पतन का रास्ता भी ढूँढ लिया। परिणाम यह हुआ कि पंचमकार के नाम पर मठों में भ्रष्टाचार फैलने लगा।

ब्राह्मणवाद की श्रेष्ठता ने समाज में इस प्रकार का आतंक फैलाया कि जो ब्राह्मण नहीं थे, वे भी ब्राह्मण होने के सूत्र ढूँढने लगे; और जो ब्राह्मणों में कुछ नीचे थे, उन्होंने स्वयं को ऊँचा सिद्ध करने के लिए उन सारे आडम्बरों का आश्रय लिया जिनके बल पर ब्राह्मणवाद की श्रेष्ठता सिद्ध होती थी। यही नहीं, ब्राह्मण अपने कर्मकाण्ड के बल पर और क्षत्रिय अपने बाहुबल पर अपनी श्रेष्ठता में निमग्न थे, लेकिन ये दोनों ही अनुत्पादक वर्ग के थे। समाज में काम करने वाले वैश्य और शूद्र थे। इन दोनों की अधिकांश आय कर के रूप में ये लोग हड़प लेते थे। सिद्धों का पूरा आन्दोलन इनके विरोध में था।

''सिद्धों का साधना-क्षेत्र भारत का पूर्वी भाग था और मगध के नालंदा (पटना) तथा विक्रमशिला (भागलपुर) के प्राचीन विद्यापीठ इनके गढ़ थे। बौद्धों की तान्त्रिक साधना में वामाचार का स्वीकार और ऋजु मार्ग का त्याग था। सिद्ध तान्त्रिक अनेक प्रकार की सिद्धियों द्वारा अपढ़ जनता में कुतूहल और आश्चर्य की सृष्टि कर रहे थे। ऐसी जनता इनके चाकचिक्य से त्रस्त-चकित थी। इन पर अपनी करामात का और अपने मार्ग का प्रभाव एवं संस्कार जमाने के लिए ये अटपटी बोली- बानी में अन्तः साधना की बातें भाखते थे और अपनी बानी की भाषा को 'संधा' या 'संध्या' भाषा कहते थे; जो कुछ अभिधा में कहते थे उसका सांकेतिक अर्थ बतलाते थे।''(मिश्र,1994, पृष्ठ 51-52)

''वज्रयान के प्रचारकों में प्रसिद्ध चौरासी सिद्धों की गणना की जाती है जो कि अपनी अलौकिक शक्ति सम्पन्नता, सिद्धियों और विभूतियों के लिए प्रसिद्ध थे।''(सिंह,2004, पृष्ठ 37) श्री राहुल सांकृत्यायन ने चौरासी सिद्धों के नाम निम्न क्रमानुसार दिया है- (1) लुइपा, (2) लीलापा, (3) विरूपा, (4) डोम्बिपा, (5) शबरपा, (6) सरहपा, (7) कंकालीपा, (8) मीनपा, (9) गोरक्षपा, (10) चोरंगिपा, (11) वीणापा, (12) शान्तिपा, (13) तन्तिपा, (14) चमारिपा, (15) खड्गपा, (16) नागार्जुन, (17) कण्हपा, (18) कर्णरिपा, (19) थगनपा, (20) नारोपा, (21) शलिपा, (22) तिलोपा, (23) छत्रपा, (24) भद्रपा, (25) दोखंधिपा, (26) अजोगिपा (27) कालपा, (28) धोम्मिपा, (29) कंकणपा, (30) कमरिपा, (31) डेंगिपा, (32) भदेपा, (33) तंधेपा, (34) कुकुरिपा, (35) कुचिपा, (36) धर्मपा, (37) महीपा, (38) अचिंतपा, (39) भलहपा, (40) नलिनपा, (41) भुसुकिपा, (42) इन्द्रभूति, (43) मेकोपा, (44) कुठालिपा, (45) कमरिपा, (46) जालंधरपा, (47) राहुलपा, (48) घर्वरिपा, (49) धोकरिपा, (50) मेदनीपा, (51) पंकजपा, (52) घंटापा, (53) जोगीपा, (54) चेलुकपा, (55) गुंडरिपा, (56) लुचिकपा, (57) निर्गुणपा, (58) जयानन्त, (59) चर्पटीपा, (60) चम्पकपा, (61) भिखनपा, (62) भलिपा, (63) कुमरिपा, (64) चवरिपा, (65) मणिभद्रा, (66) मेखलापा, (67) कनखलापा, (68) कलकलपा, (69) कंतालीपा, (70) धहुलिपा, (71) उधलिपा, (72) कपालपा, (73) किलपा, (74) सागरपा, (75) सर्वभक्षपा, (76) नाग बोधिपा, (77) दारिकपा, (78) पुतुलिपा, (79) पनहपा, (80) कोकालिपा, (81) अनंगपा, (82) लक्ष्मीकरा, (83) समुदपा, (84) भलिपा।

''इन सिद्धों में सबसे पुराने 'सरह' हैं जिनका काल डॉ0 विनयतोश भट्टाचार्य ने विक्रम संवत् 690 निश्चित किया है।''(शुक्ल,2003, पृष्ठ 26)

सिद्धों के अनुसार इनके साधना- मार्ग को जानने वाला ही प्रबुद्ध है। यह तथ्य इन पदों से स्पष्ट होता है, 'विरमानंद विलक्खण सुद्ध। जो एथु बुज्झइ सो एथु बुद्ध। भूसुकु भणइ मइँ बूझिय मेलें। सहजाणंद महासुह लीलें।।' -भूसुकपा

'काआ तरुवर पंच विडाल । चंचल चीए पइट्ठा काल। दिढ करिअ महासुह परिमाण। लुई भणइ गुरु पुच्छिअ जाण।।' -लुईपा

सिद्धों ने महासुख (महारस, समरस या सहजामृत रस) की उपलब्धि प्रज्ञा और उपाय के योग से होने की बात कही। महासुख, सहवास-सुख के सदृश माना गया और शक्ति सहित देवताओं के युगनद्ध (स्त्री-पुरूष का आलिंगनबद्ध जोड़ा) रूप की कल्पना की गई, साथ में अश्लील मुद्राओं की मूर्तियों का चलन जोर-शोर से हुआ। साधकों का 'श्री-समाज' हुआ और भैरवी चक्र की 'श्री वृद्धि'-साधना होने लगी। ''निम्न वर्ण की स्त्रियों के साथ मद्यपान करके वज्रयानी परम महासुख में लीन होने लगे। सिद्धि के लिए साधकों को किसी शक्ति (स्त्री) का सहवास आवश्यक हुआ। समाज को इस साधना ने पतन के किस गर्त में धकेलने का उपक्रम कर लिया था, इसकी इतने से ही कल्पना की जा सकती है।''(मिश्र,1994, पृष्ठ 53) आचार्य शुक्ल जी लिखते हैं, ''वज्रयानियों की योगतन्त्र साधनाओं में मद्य तथा स्त्रियों का- विशेषतः डोमिनी, रजकी आदि का- अबाध सेवन एक आवश्यक अंग था।''(शुक्ल,2003, पृष्ठ 27) इस सम्बन्ध में डॉ0 शिवकुमार शर्मा जी लिखते हैं कि ''धर्मवीर भारती ने सिद्ध साहित्य में उपलब्ध होने वाली अश्लीलता पर आध्यात्मिकता का आरोप करना चाहा है किन्तु हमारे विचार में उस पर रहस्यात्मक प्रतीकात्मक आरोपित करना असंगत है। उन्होंने सिद्धों की शब्दावली की दार्शनिक व्याख्या करते हुए इसे आध्यात्मिक घोषित कर सिद्ध साहित्य के उत्कट भोगवाद को गौण सिद्ध करना चाहा है, किन्तु हमारा विचार है कि सिद्धों का तथाकथित रहस्यवादी साहित्य किसी भी कारण से अलौकिक प्रेम का काव्य नहीं कहा जा सकता है। सिद्ध साहित्य में गहन रहस्यात्मक अनुभूतियों की खोज समस्त तान्त्रिक धारा के प्रवाह को प्रतीपी दिशा में मोड़ने के अनावश्यक प्रयत्न के सिवाय और कुछ भी नहीं है। कभी ऐसा अवश्य था जबकि समस्त सिद्ध साधना और तत्कालीन समाज अश्लीलता और कामुकता के प्रवाह में बेसुध हो चला था।''(शर्मा,1980, पृष्ठ 35-36)

सिद्ध, शास्त्रागम की निन्दा करते थे एवं शास्त्रज्ञानी को मूढ़ मानते थे। अपढ़ सीधी-सादी जनता को आकृष्ट करने सम्बन्धित निम्न पद अवलोकनीय है, 'सत्यागम बहु पढइ सुण बढ़ किं पिण जाणइ।' -कण्हपा

कापालिक जोगियों से बचे रहने का उपदेश घर में सास-ननद आदि देती रहती थीं, पर वे आकर्षित भी होती थीं, 'राग देस मोह लाइअ छार। परम भीख लवए मुक्तिहार। मारिअ सासु नणंद घरे शाली। माअ मारिया, कण्ह भइल कबाली।।'

''जीवन के ऋजु मार्ग के ये विरोधी थे और इनकी सरणियाँ जीवन की सर्वसामान्य अनुभूतियों के अनुकूल नहीं पड़ सकती थीं। इनके उपदेश जीवन के ही सहज स्वरूप के विपरीत थे। फिर इनकी गणना उस साहित्य में कैसे हो सकती है जो सब प्रकार के विशेषत्व का निरसन करने वाला और सर्वसाधारण स्थिति उत्पन्न करने वाला होता है।''(मिश्र,1994, पृष्ठ 54)

सिद्ध प्रायः अशिक्षित और हीन जाति से सम्बन्ध रखते थे, अतः उनकी साधना की साधन भूत मुद्रायें - कापाली, डोम्बी आदि नायिकायें भी निम्न जाति की थीं क्योंकि उनके लिए ये ही सुलभ थीं। इनकी सांध्य भाषा की उलझी हुई शब्दावली में उनके अधकचरे दार्शनिक होने का आभास भले ही मिल जाय किन्तु असल में वे दार्शनिक नहीं थे और न ही दर्शन की कोई ऊँची वस्तु देना उनका उद्देश्य था। ''उन्होंने धर्म और अध्यात्म की आड़ में जन-जीवन के साथ बिडम्बना करते हुए नारी का उपभोग किया। बस यही उनका चरम गन्तव्य था। उनके कमल और कुलिष, योनि और शिश्न के प्रतीक मात्र हैं।''(शर्मा, 1980, पृष्ठ 36)

''सिद्धों की काव्य कृतियों में प्रधान रूप से नैराष्य भावना, कायायोग, सहज शून्य की साधना और भिन्न- भिन्न प्रकार की समाधिजन्य दशाओं का चित्रण किया गया है। पर यहाँ यह नहीं भूलना चाहिए कि सिद्ध साहित्य में शताब्दियों से आने वाली धार्मिक और सांस्कृतिक विचारधारा का स्पष्ट उल्लेख है तथा इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसके द्वारा धार्मिक शृंखला और भी दृढ़ हो गई है।''(सिंह,2004, पृष्ठ 38)

विविध रूप

सिद्धों के साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया जाता है- (क) नीति तथा आचारमय, (ख) उपदेशात्मक, (ग) साधना-सम्बन्धी अर्थात् रहस्यवादी।

इसके अतिरिक्त सिद्ध साहित्य में फुटकर रूप के कतिपय काव्य शास्त्रीय बातों की भी प्रासंगिक रूप से चर्चा मिलती है। सिद्ध साहित्य में साधक तथा डोम्बी और शबरी आदि परस्पर आश्रय और आलम्बन हैं। गुरु दौत्य कार्य सम्पन्न करता है, कापालिका आदि नायिकाओं को स्वकीया, परकीया, सामान्या, प्रौढ़ा, मुग्धा, मध्या एवं अभिसारिका आदि की कोटि में रखा गया है। चर्या पदों में शृंगार के नायकारब्ध तथा नायिकारब्ध दोनों रूप मिलते हैं। उद्दीपन- विभाव के अन्तर्गत नायिका का सौन्दर्य तथा प्राकृतिक वर्णन आते हैं।

सामान्य प्रवृत्तियाँ

सिद्धों के तान्त्रिक सम्प्रदाय के समानान्तर काल में शैवागमों के कापालिक, रसेश्वर, जंगम, पाषुपत, लिंगायत आदि सम्प्रदायों का प्रचलन हुआ। शाक्तों के वीर आदि सम्प्रदाय; वैष्णवों के पांचरात्र, आदि-सम्प्रदाय तथा नाथ सम्प्रदाय आदि भी उस समय निज-निज मन्तव्यों के प्रसारण में परायण थे। उक्त सभी सम्प्रदाय भारतीय धर्म साधना के मध्य युगीन तान्त्रिक प्रभाव से अत्यधिक प्रभावित थे। निःसन्देह भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की पारिभाषिक शब्दावली में थोड़ा- बहुत अन्तर रहा हो, किन्तु इस रूप में प्रवृत्तिगत एकता दृष्टिगोचर होती है :

(1) प्रत्येक तान्त्रिक सम्प्रदाय में देवता, मन्त्र और तत्व दर्शन की पारिभाषिक शब्दावली भिन्न-भिन्न थी, किन्तु साधना पद्धति सबकी समान थी।
(2) प्रत्येक सम्प्रदाय में शास्त्रीय चिन्तन पक्ष गौण था। साधना क्रिया और चर्यापदों की प्रमुखता थी। साधना पक्ष में गुरु को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया। तान्त्रिक साधना में शिव-शक्ति, लिंग-अंग, प्रज्ञा-उपाय, रस-अभ्रक आदि की अद्वय स्थिति पर अत्यधिक बल दिया गया।
(3) तान्त्रिक सम्प्रदायों की साधना पद्धति में शिव और शक्ति की युगनद्धता और उनकी मिथुनात्मक व्याख्या मिलती है। प्रत्येक सम्प्रदाय की साधना में गुह्याचारों पर अत्यधिक बल दिया गया है।
(4) तान्त्रिक साधना में जाति-पांति और वर्ण-भेद आदि की भरसक निन्दा की गई है।
(5) इन सम्प्रदायों में योग साधना पर अत्यधिक बल दिया गया है। तान्त्रिक साधना के लिए शरीर-शुद्धि प्रथम आवश्यकता है। ब्रह्माण्ड में जो शिव और शक्ति विद्यमान हैं, शरीर में वही सहस्त्राधार और कुण्डलिनी है। उनकी अद्वयता के लिए योग-साधना अनिवार्य है।
(6) मिथुनात्मक साधना की निरूपण पद्धति सर्वथा सांकेतिक है।
(7) प्रत्येक सम्प्रदाय में वैदिक देवताओं के प्रति अनास्था प्रकट की गई है। उनके स्थान पर लोक देवताओं और उनकी असंस्कृत पूजन पद्धतियों का प्रश्रय दिया गया है।
(8) सभी सम्प्रदायों ने ब्राह्मणवाद की पौराणिक रूढ़ियों का खण्डन और वेदों के प्रति असम्मान दर्शाया है।
(9) तान्त्रिक साधना में मरणोपरान्त मुक्ति या निर्वाण प्राप्ति की अपेक्षा जीवन काल में सिद्धियों को प्राप्त करना श्रेयस्कर बताया गया है।
(10) चमत्कार प्रदर्शन एवं मन्त्र-यन्त्र और बीजाक्षरों का प्रचलन सभी सम्प्रदायों में समान रूप से हुआ है। गुह्य साधना के ब्याज से कामशास्त्रीय विधियों का समावेश परोक्ष रूप से हुआ है।
(11) तान्त्रिक काल में उद्भूत वैष्णवों के पांचरात्र सम्प्रदाय में उपासना के चार अंग स्वीकार किये गये हैं- ज्ञानपाद, योगपाद, क्रियापाद और चर्यापाद। क्रियापाद का सम्बन्ध मूर्तियों और मन्दिरों के निर्माण से है। चर्यापाद का सम्बन्ध मन्त्रों एवं तन्त्रों की व्याख्या से है। इस प्रकार चमत्कार प्रिय युग में मन्दिरों एवं मूर्तियों के निर्माण में कृत्रिमता और अलंकरण-प्रियता को स्थान मिलने लगा। रीतिकाल में कलागत जिस सज्जावाद, चमत्कारप्रियता और कृत्रिमता के दर्शन होते हैं, उसका आरम्भ तान्त्रिक काल में ही हो गया था।

कला पक्ष

''भाषा की दृष्टि से भी सिद्ध साहित्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।''(शर्मा,1980, पृष्ठ 38) सिद्धों की कुछ रचनाएँ अपभ्रंश भाषा में है। यह भाषा अर्द्धमागधी अपभ्रंश के निकट की है। इसे संध्या भाषा भी कहा जाता है क्योंकि यह भाषा अपभ्रंश के संध्या काल में प्रचलित थी। ''आचार्य शुक्ल के अनुसार, 'गंगा जउँना माझे बहइ रे नाई' (इला-पिंगला के बीच सुशुम्ना नाड़ी के मार्ग से शून्य देश की ओर यात्रा) इसी से वे अपनी बानियों की भाषा को 'संध्या भाषा' कहते थे।''(शुक्ल,2003, पृष्ठ 29)

इनकी रचनाओं में शान्त और शृंगार रस उपलब्ध होते हैं। भले ही काव्य लक्षणों के अनुसार इनकी रचनाओं में रस का परिपाक न हुआ हो, परन्तु उसमें अलौकिक आनन्द तथा आत्म-तोश का प्रवाह अवश्य है।

सिद्ध साहित्य में दोहा, चौपाई और चर्या गीत आदि छन्द मिलते हैं।

प्रभाव एवं महत्त्व

पूर्व मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल में जो गोपी-लीला एवं अभिसार के वर्णन मिलते हैं, सिद्ध साहित्य में उसका पूर्व रूप देखा जा सकता है। सिद्धों की उलझी हुई उक्तियों को कबीर की उलटबाँसियों का प्रेरक समझना चाहिए। सिद्ध तंतिपा की अटपटी बानी इस प्रकार है, ''बेंग संसार बाड़हिल जाअ। दुहिल दूध के बेटे समाअ। बलद बिआएल गविआ बाँझे। पिटा दुहिए एतिना साँझे। जो सो बुज्झी सो धनि बुधी। जो सो चोर सोई साधी। निते निते पिआला शिहे जूझअ। ढेढपाएर गीत बिरले बूझअ।'' (शुक्ल,2003, पृष्ठ 28)

आचार्य शुक्ल जी सिद्धों की रचनाओं के सम्बन्ध में स्पष्ट करते हैं कि 'वे साम्प्रदायिक शिक्षा मात्र हैं, अतः शुद्ध साहित्य की कोटि में नहीं आ सकतीं।' इससे अलग डॉ0 रामकुमार वर्मा जी लिखते हैं कि ''सिद्ध साहित्य का महत्त्व इस बात में बहुत अधिक है कि उससे हमारे साहित्य के आदि रूप की सामग्री प्रामाणिक ढंग से प्राप्त होती है। चारणकालीन साहित्य तो केवल तत्कालीन राजनीतिक जीवन की प्रतिच्छाया है। यह सिद्ध साहित्य शताब्दियों से आने वाली धार्मिक और सांस्कृतिक विचारधारा का स्पष्ट उल्लेख है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी यह साहित्य एक महत्त्वपूर्ण काल है।''(शर्मा,1980, पृष्ठ 39) डॉ0 शिवकुमार शर्मा का इस सम्बन्ध में यह विचार रहा है, ''साहित्यिक उदात्तता और परिपक्वता की दृष्टि से उक्त साहित्य कोई विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है और कदाचित् इसीलिए यह उपेक्षणीय भी रहा है।''(शर्मा,1980, पृष्ठ 39) सिद्धों ने अनेक चर्यापदों को विविध रागों में लिखकर परवर्ती गीतिकाव्यकारों जयदेव, विद्यापति और सूरदास आदि के लिए मार्ग खोल दिया। शृंगार को काम-समन्वित बना इन्होंने भागवतकार और गीत-गोविन्दकार जयदेव के लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर दी। कतिपय विद्वानों का विचार है कि दर्शन क्षेत्र में इन लोगों ने शंकर के मायावाद के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया और उनके अद्वैतवाद को बौद्धों की शताब्दियों से चली आ रही शून्य सम्बन्धी चिन्तन धारा ने, अग्रसर करने के लिए कम महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया।

सन्दर्भ

पालीवाल, डॉ0 सूरज (2002)- साहित्य और इतिहास दृष्टि, जोधपुर : राजस्थानी ग्रन्थागार, पृष्ठ संख्या 101

मिश्र, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद (1994)- हिन्दी साहित्य का अतीत, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 51-52, 53, 54

डॉ0 नगेन्द्र (1988)- हिन्दी साहित्य का इतिहास, नयी दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ संख्या 79

वर्मा, डॉ0 रामकुमार (1964)- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, प्रयाग : रामनारायण लाल बेनीमाधव, पृष्ठ संख्या 51, 55-56

सिंह, डॉ0 विजयपाल (2004)- हिन्दी साहित्य का इतिहास, इलाहाबाद : जयभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 37, 38

शर्मा, डॉ0 शिवकुमार (1980)- हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, दिल्ली : अशोक प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 35-36, 36, 38, 39

शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र (2003)- हिन्दी साहित्य का इतिहास, नयी दिल्ली : प्रकाशन संस्थान, पृष्ठ संख्या 26, 27, 28, 29

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,34-37
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 10 मार्च 2015

छायावादी कविता में रेखाचित्र का प्रभाव

डॉ. विभा मेहरोत्रा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *छायावादी कविता में रेखाचित्र का प्रभाव* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *विभा मेहरोत्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

काव्यगत रेखाचित्र में केवल रूप से का ही अंकन नहीं होता है बल्कि वह शब्द स्पर्श, गन्ध और रस सम्पुष्ट भी होता है शब्द, स्पर्श आदि से विरहित केवल चाक्षुष चित्र का विशेष साहित्यिक मूल्य नहीं आंका जा सकता है।

इन चित्रों की प्रभावोत्पादकता तभी बढ़ सकती है जब से शब्द, गन्ध, रस आदि से समन्वित हों।[1]

आधुनिक काल तक आते आते रेखाचित्र से आशय ऐसी रचना से है जिसमें वर्णन का प्राद्यान्य होता हो।

A Brief Composition simply constructed and usually most unified in that if presents a single scene, a single incident. xxxx sketch as preliminary ground work for more developed work it is now often employed for a finished product of simple proportion as a character sketch a vandeville sketch, a descriptive sketch etc. [2]

कविता में यह वीणा के तारों का त्वरित गति से एक साथ झंकृत लयों सा होता है जिसका अंत संगीतमयी ध्वनि के साथ होता है। अतः कवि का वाग्वैदग्ध्य ही रेखाचित्र का जनक माना जा सकता है।

It is quick and soft touch of many strings, all shutting up in one musical dose, it is wits descent of any plain song.[3]

छायावादी कविता में रेखाचित्रकार के रूप में कवि ने अपने जीवन की वास्तविकता से जुड़ी किसी भी जड़ अथवा चेतन वस्तु को एक चित्रकार के रूप में अंकित किया और अपनी कुशल भाव प्रवीणता से उसके प्रभावों को अतिरंजित किया है। छायावादी कवियों ने प्राचीन को नवीन रूप में इस प्रकार रेखांकित किया है, जो सहृदय के हृदय में करुणा एवं देवी भावों का संचरण में सक्षम प्रतीत होते हैं और उनकी कविता में ये रेखाचित्र कलाकार का संवेदनशील हृदय और उनकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि की प्राण प्रतिष्ठा करते हुए आस्वादन देते हैं। छायावादी कवियों से पूर्व सूर, तुलसी आदि शीर्ष कवियों ने भी रेखाचित्र का सहारा लिया-उदाहरणार्थ :

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. बी. एस. महाविद्यालय कानपुर (उ. प्र.) भारत। (आजीवन सदस्य)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

'कबहु हानि को लाई अंगूरी, चलन सिखावति ग्वारि/ कबहु हृदय लगाई हितकरि लेत अंचल द्वारि,।' x x x x सूर- सूर नर सबै मोहे, निरखि यह अनुहारि।।'

'स्याम सरीक सुभांय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन x x x x सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलक/ सोहत मौस मनोहर माथे। रुचिरता निवासा भृकुता मनि गाथे।।'

पंत, प्रसाद, महादेवी, निराला ने सौन्दर्य तत्व का चित्रण करने के लिए रेखाचित्र के रूप में संश्लिष्ट, कलात्मक, वैभवपूर्ण व मानव चित्रों का वैविध्यपूर्ण अभिव्यक्ति करी है जैसा कि स्वयं पंत ने लिखा है- अप्रस्तुत दृश्य को ज्यों का त्यौं प्रस्तुत करते हुए शब्दों में चित्र उतरता है इस काल की कविता में दृश्य, गति, क्रिया सभी के चित्रण प्राप्त होते हैं जिसमें दृश्य चित्रण को सजीव विशेषण से युक्त कर दिया जाता है।

कविता के लिए चित्र भाषा की आवश्यकता होती है जिसके शब्द सस्वर होने चाहिये। जो बोलते हैं सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े जो अपने भाव को अपनी ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें।[4]

जयशंकर प्रसाद तो कविता को वर्णमय/ चित्र मानते हैं जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करती है।[5] पंत ने 'ग्राम्या' में 'रेखाचित्र' शीर्षक से लम्बी कविता लिखी है।

'नील घूम रेखा ज्यों खिंची समान्तर। बर्ह पुच्छ से जलद पंख, अंबर में बिखरे सुंदर/ रंग रंग की हलकी गहरी, छाया में छिटकाकर'[6]

छायावादी कवियों ने प्रकृति के अनेक सुकुमार सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं। पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा उन्होंने प्रकृति के प्रति अधिक प्रेम व्यक्त किया, उसका सूक्ष्म निरीक्षण किया और अपने काव्य में उसे प्रमुख स्थान दिया। छायावादी कवियों ने प्रकृति को उसके स्वतन्त्र रूप में ग्रहण किया और उसे काव्य के एक स्वतन्त्र विषय के रूप में प्रतिष्ठित भी किया। विभिन्न प्राकृतिक उपादानों का चित्रोपम वर्णन छायावादी काव्य की एक विशेषता है। इन कवियों न उषा, संध्या, रात्रि, नदी, निर्झर, बादल, पक्षी आदि उपादानों के सौन्दर्य का चित्रण अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से किया है। उनकी भाषा की चित्रात्मक वर्णन कर दृष्टि से सक्षम है।

छायावादी कवियों में अग्रणी जयशंकर प्रसाद ने अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में ही प्राकृतिक सौन्दर्य का अंकन प्रारम्भ किया था किन्तु उनके प्राकृतिक चित्रण में प्रौढ़ता प्रायः बाद की रचनाओं में मिलती है। 'लहर' तथा 'कामायनी' में उन्होंने प्रकृति का भावात्मक चित्रण किया है और उस पर कहीं-कहीं नारी-भावना का आरोप भी किया है। इस दृष्टि से यह चित्र दर्शनीय है।

'बीती विभावरी जाग री,/ अम्बर पनघट में डुबो रही/ तारा-घट ऊषा-नागरी/ खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा,/ किसलय का अंचल डोल रहा,/ लो यह लतिका भी भर लाई-/ मधु मुकुल नवल रस गागरी ।।'[7] (लहर-19)

कवि ने इन पंक्तियों में ऊषा का चित्र प्रस्तुत करने के लिये मानवीकरण का उपयोग किया है। 'ऊषा-नागरी' अम्बर पनघट में 'तारा-घट' डुबा रही है। उसका कार्य-व्यापार आगे भी चलता है। पक्षियों का कलरव घड़े की कुल-कुल के समान है। 'ऊषा-नागरी' के किसलय का अंचल डोल रहा है। यह प्रकृति के प्रमुख उपादान ऊषा का सघन चित्र है जिसमें कई व्यापार दिखलाये गये हैं।

'कामायनी' में प्रसाद ने संध्या तथा रात्रि का सुन्दर और बहुरंगी चित्रण किया है। निम्नलिखित वर्णन में विविध वर्णों की योजना प्रभावशालिनी है, ''जब कामना सिंधु तट आई/ ले संध्या का तारा दीप,/ फाड़ सुनहली साड़ी उसकी/ तू क्यों हंसती अरी प्रतीप। विकल खिलखिलाती है क्यों तू?/ इतनी हंसी न व्यर्थ बिखेर,/ तुहिन कणों फेनिल लहरों में,/ मच जावेगा फिर अंधेर। रजत कुसुम के नव पराग सी/ उड़ा न दे तू इतनी धूल,/ इस ज्योत्सना की, अरी बाबली/ तू इसमें जावेगी भूल।''[8] (कामायनी 38-39)

संध्याकालीन स्वर्णिम मेघ ही संध्या की सुनहली साड़ी है, जिसे छेड़छाड़ करने वाली रात्रि ने फाड़ दिया है। फिर भी वह चाँदनी के रूप में विकल होकर खिलखिला रही है। उसकी हंसी रूपहले फूलों के नवीन पराग के समान श्वेत और मादक है।

अनेक भावनाओं, अनेक कार्य-व्यापारों तथा अनेक रंगों को प्रस्तुत करने वाला संध्या तथा रात्रि का ऐसा वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रकृति के उल्लसित रूप का चित्रण प्रसाद ने 'कामायनी' में अन्यत्र भी किया है। जल-प्रलय के बाद पुनः सृष्टि का विकास होता है। विकासमान प्रकृति का चित्र है, ''वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का/ आज लगा हंसने फिर से/ वर्षा बीती हुआ सृष्टि में/ शरद विकास नये सिर से/ नव कोमल आलोक बिखरता/ हिम संसृति पर भर अनुराग/ सित सरोज पर क्रीड़ा करता जैसा मधुमय पिंग पराग।''[9]

कवि ने हिम-राशि पर पड़ने वाले प्रातःकाल के कोमल प्रकाश की यहाँ पर अत्यन्त सुन्दर उपमा दी है। वह प्रकाश अनुराग सहित इस प्रकार फैलने लग जैसे श्वेत कमल पर मकरंद-युक्त पीली पराग क्रीड़ा करता है।

निराला जी ने एक भिक्षुक का रेखाचित्र खींचा है जो पछताता सा पथ पर आ गया है और भूख को ज्वाला को बुझाने के लिए मुट्ठी भर दाने के लिए भटकता फिर रहा है।

''यह आता,/ दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता। पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,/ चल रहा लकुटिया टेक/ मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटाने को/ मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता,/ दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता। साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,/ बाँए से वे मलते हुए पेट को चलते,/ और दाहिना दया दृष्टि पाने की ओर बढ़ाए''[10]

महाकवि निराला ने रात्रि को नायिका के रूप में ग्रहण कर ऊषा का एक सुन्दर चित्र खींचा है। इसमें सोकर उठी हुई युवती का चित्र है जिसमें उसकी अस्त-व्यस्तता और शारीरिक चेष्टाओं का अंकन किया गया है- ''प्रिय यामिनी जागी। अलस पंकल-दृग अरूण मुख, तरूण अनुरागी। खुले केश अशेष शोभा भर रहे,/ पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तिर रहै,/ बादलों में फिर अपर दिनकर रहे,/ ज्योति की तन्वी तड़ित द्युति ने क्षमा माँगी/ हेर उर-पट फेर मुख के बाल/ लख चतुर्दिक चली मन्द मराल/ गेह में प्रिय स्नेह की जयमाल/ वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग में तागी।।''

निराला के चित्र प्रायः संश्लिष्ट तथा संतुलित होते हैं। अनेक चित्रण में क्रम तथा अन्विति दोनों है। निराला का ग्राम-जीवन का यह चित्र सजीव और प्रभावशाली है- ''बहुत दिनों बाद खुला आसमान/ निकली है धूप, हुआ खुश जहान। दिखीं दिशाएं झलके पेड़ -/ चरने को चले ढोर-गाय-भैंस-भेड़/ खेलने लगे लड़के छेड़-छेड़ --/ लड़कियाँ, घरों को कर भासमान।/ लोग गाँव गाँव को चले,/ कोई बाजार कोई बरगद के पेड़ के तले,/ जाँघिया - लंगोटा ले संभले/ तगड़े तगड़े सीधे नौजवान।''[11]

बहुत दिनों के बाद आसमान खुला है तो सभी लोग प्रसन्न हो उठे है और उल्लसित होकर अपने रूके हुए कामों को करने में लग रहे हैं। चित्र का परिप्रेक्ष्य बड़ा है और उसमें दिशाएं, पेड़-पौधे, पशु, बालक, वृद्ध आदि सबका समावेश है। इस प्रकार सीमित शब्दों द्वारा कवि ने एक विशाल चित्र का निर्माण किया है।

निराला के काव्य में इस प्रकार के अनेक चित्र प्राप्त होते हैं। प्रकृति के ही नहीं त्रसित वर्षा के भी चित्र मिलते हैं।

पंत जी ने भी सिद्धहस्त कलाकार के समान अपने चित्रों में संश्लिष्ट-चित्रण किया है, जैसा कि इस चित्र में है- ''नौका से उड़ती जल हिलोर। सामने शुक्र की छवि झलझ, पैरती परी-सी जल में कल। रूपहरे कचों में ही ओझल/ लहरों घूंघट से झुकझुक दशमी का शशि निज तिर्यक मुख। दिखलाता मुग्धा-सा रूक-रूक।''[12]

नदी की लहरों में प्रकाशमान शुक्र का प्रतिबिंब तैरती हुई परी जैसा लगता है जो चांदी जैसी लहरों में कभी छिप जाती है कभी दिखाई देती है। दशमी तिथि का अर्ध-वृत्त जैसा चन्द्रमा किसी मुग्धा नायिका के समान सरल भाव से अपने मुख को लहरों के घूँघट में से जब तब अनावृत्त कर देता है।

पंत की एक तारा की निम्न पंक्तियां देखिए, 'पश्चिम नभ में हूँ रहा देख/ उज्जवल, अमंद नक्षत्र एक'[13]

अकलुष, अनिन्द्य नक्षत्र ज्यों मूर्तिमान ज्योतित विवेक,

'उर में हो दीपित अमर टेक।'

इन पंक्तियों में छह चित्रों की भरमार है- 1. उज्जवल, 2. अमन्द, 3. अकलुष, 4. अनिन्द्य, 5. मूर्तिमान ज्योतित विवेक, 6. आकाश के उर की वह अमर टेक जो ज्योतित हो।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने प्राकृतिक उपादानों का संश्लिष्ट तथा गतियुक्त चित्रण किया है। कवयित्री के अतिरिक्त वे एक कुशल चित्रकर्त्री भी है। अतः उनके काव्य में चित्रकला की विशेषताओं का आ जाना स्वाभाविक है। अनेक बहुरंगी चित्रों में इतनी शीघ्रता से रंग बदलते हैं कि पाठक को उन्हें ध्यान से देखने का पर्याप्त अवकाश ही नहीं मिल पाता। संध्या का यह चित्र ऐसे ही संश्लिष्ट चित्रों में से है- ''रागभीनी तू सजनि, निश्वास भी तेरे रंगीले। लोचनों में क्या मंदिर नव?/ देख जिसको नीड़ की सुधि फूट निकली बन मधुर रव/ भूलते चितवन गुलाबी में चले घर खग हठीले।''

''आज इन तंद्रिल पलों में/ उलझती अलकें सुनहरी असित निशि के कुंतलों में/ सजनि नीलम रज भरे रंग चूनरी के अरूण पीले/ रेख सी लघु तिमिर लहरी/ चरण छू टेरे हुई है सिंधु सीमाहीन गहरी। गीत तेरे पार जाते बादलों की मृदु तरी ले। कौन छायालोक की स्मृति/ सिहरती पलकें किये देती विहंसते अधर गीले।''[14]

इस गतियुक्त चित्र में अनेक रंगों का समन्वय है तथा एक ही चित्र में अनेक चित्र समाहित हैं।

निष्कर्षत

छायावादी कवियों ने जिन विषयों पर रेखाचित्र की तूलिका चलायी है उनके प्रति पाठकों की संवेदना तथा सहानुभूति को सफलतापूर्व जाग्रत किया है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इस काल के रेखाचित्र जीवन की विविध समस्याओं और उनसे सम्बद्ध पात्रों से पाठकों का साधारणीकरण उनका सहज लक्ष्य है। छायावादी कविता में रेखाचित्र की विद्या लोकदर्शन की सहजता, चिन्तन की प्रखरता, समस्याओं की विविधता युग धर्म कर सजगता की दृष्टि से अप्रितम है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1]*वृहद् इतिहास- छठा भाग* - (सम्पादक) डा0 नगेन्द्र
[2]*A Hand Book to Literature* by – W.F. Thrall and A Hibbard- New York, 1961-P. 462.
[3]*Over bory's chracters* – A Cabinet of Characters Oxford University Press – London – 1925 – PP VI-VII.
[4]सुमित्रानंदन पन्त- भूमिका 'पल्लव'
[5]*हिन्दी रेखाचित्र* -कृपाशंकर, पृ0 सं0 21
[6]सुमित्रानंदन पन्त- ग्राम्या- 'रेखाचित्र' कविता
[7]जयशंकर प्रसाद- लहर, पृ0 सं0 19
[8]'' '', कामायनी, पृ0 सं0 38-39
[9]'' '' ''
[10]निराला- भिक्षुक, 'परिमल' पृ0 107
[11]निराला- ग्राम्या जीवन
[12]पंत- नौका विहार
[13]पंत- एक तारा
[14]महादेवी- सांध्य बेला

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,38-41
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 मार्च 2015

आंगनबाड़ी शिक्षिकाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन

अनिता डहरिया* एवं डॉ. पुष्पा तिवारी**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *आंगनबाड़ी शिक्षिकाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *अनिता डहरिया एवं पुष्पा तिवारी* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

सारांश

समस्या जिन्दगी का अभिन्न अंग है, क्योंकि समस्या कभी खत्म नहीं होती। विशेषकर महिलाओं के लिए चाहे वो स्कूल के शिक्षक हो, बैंक के कर्मी हो, दिहाड़ी महिला मजदूर हो या कोई भी महिला कर्मचारी या अधिकारी हो। उनको कई समस्याओं का सामना करना होता है, जिसका स्वरूप शारीरिक, मानसिक, परिवारिक, सामाजिक कुछ भी हो सकता है; क्योंकि कार्यकाजी महिलाओं को अपनी जिन्दगी में दोहरी भूमिका निभानी होती है। एक ओर कार्यस्थल पर समस्याओं का सामना करते हुए कार्य करना होता है, तो दूसरी ओर अपने परिवार में आने वाले समस्याओं का भी सामना करना होता है। इस शोध में आंगनबाड़ी में कार्यरत महिला शिक्षिकाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन कर रहे है। जिसके अन्तर्गत आंगनबाड़ी में उनके कार्यो एवं दायित्वों का अध्ययन एवं दोहरी भूमिका के निर्वहन में होने वाली समस्याओं का अध्ययन किया गया। इसमें छत्तीसगढ़ राज्य के धमतरी जिला के धमतरी विकासखण्ड के 50 आंगनबाड़ी शिक्षिकाओं को विषय के रूप मे लिया गया जिसका निष्कर्ष यह निकला कि महिला शिक्षिकाओं का कार्य और दायित्वों के उचित निर्वाहन से सरकार की योजनाएं उम्मीद से अधिक सफल हो रही है, किन्तु आंगनबाड़ी में कार्यरत शिक्षिकाओं को विभिन्न समस्याओं से जूझते हुए अपनी दोहरी भूमिका के निर्वाहन में कठिनाई होती है पाया गया।

प्रमुख शब्द : आंगनबाड़ी, शिक्षिका, कार्य-दायित्व, दोहरी भूमिका।

प्रस्तावना

महिलाओं का समाज में स्थिति का समुचित परिचय प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है, कि विभिन्न कालों में उसकी पृष्ठभूमि का सही अध्ययन किया जाए। वैसे विधाता ने नारी एवं पुरूष वर्ग की रचना एक साथ की है फिर भी पुरूष और नारी की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिक स्थिति में पुरूष का पलड़ा भारी हो रहा है; जबकि प्राचीन काल से ही महिला पुरूष

* शोध छात्रा, शा. दू. ब. महिला स्नातक स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय [कालीबाड़ी] रायपुर (छ. ग.) भारत
** सहायक प्राध्यापिका, शा. दू. ब. महिला स्नातक स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय [कालीबाड़ी] रायपुर (छ. ग.) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

के समकक्ष अपने आप को स्थापित कर चुकी है तथा आज भी महिलाऐं हर क्षेत्र में आगे आ रही है खेत खलिहानों में, कल कारखानों में, मजदूरी के कार्यो में तथा व्यवसायिक क्षेत्रों में, डॉक्टर, इंजीनियर, पुलिस अधिकारी, प्रशासनिक सेवाओं में, उद्योगों में, शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान, पत्रकारिता आदि क्षेत्रों में तेजी से सशक्त होती जा रही है। महिलाओं का पुरूषों के समकक्ष सफलता प्राप्त करना एक आश्चर्य वाली बात नहीं है, ये उनके द्वारा प्रारम्भ से किये गये कठोर परिश्रम का फल है आज भी महिलायें दोहरी भूमिका निभाते हुए सफलता का परचम लहरा रही हैं। इस शोध का विषय आंगनबाड़ी शिक्षिकायें हैं जो दोहरी जिन्दगी जीते हुए सरकार के योजनाओं को आंगनबाड़ी के माध्यम से सफल बनाने का भरपूर प्रयास कर रही हैं जिसका लाभ बच्चों को एवं आंगनबाड़ी से सम्बन्धित महिलाओं को मिल रहा है। जबकि उनके खुद के परिवार है, छोटे छोटे बच्चें है, अनेक परिवारिक, सामाजिक, आर्थिक समास्यायें हैं, अनेक सामाजिक रीति रिवाज परम्परायें हैं, जो उनके कार्यो में बाधा उत्पन्न करता है। तब भी आंगनबाड़ी के शिक्षिकायें अपने कार्यों एवं दायित्वों का निर्वाह कैसे समस्याओं का सामना करते हुए कार्यस्थल और परिवार व समाज में तालमेल बैठाती हैं, और कहॉ तक कैसे सफल होती हैं, और उनकी मेहनत को क्या पुरूषों से कम आंका जा सकता है ये सब अध्ययन के माध्यम से जानेंगे। आंगनबाड़ी कार्यकर्ता को दोहरी भूमिका निभानी पड़ती है वे कुशलतापूर्वक इस भूमिका को निभाती हैं; जो कि काफी सराहनीय हैं। स्वयं के इनके परिवार होते है आंगनबाड़ी की शिक्षिकाओं को घर में खाना बनाना, बच्चों की देखरेख तथा घरों के अन्य कार्य भी करने पड़ते हैं। घर के कार्य करने के बाद भी ये आंगनबाड़ी में अपने कार्यों को अपना कर्तव्य समझकर बखूबी निभाती हैं, परिणामतः बच्चों एवं महिलाओं से संबंधित सरकारी योजनाएं सफल होती हैं।

शोध का विषय : आंगनबाड़ी शिक्षिकाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन।

उददेश्य : (1) आंगनबाड़ी में कार्यरत महिला शिक्षिकाओं के कार्यो एवं दायित्वों का अध्ययन करना। (2) आंगनबाड़ी में कार्यरत महिला शिक्षिकाओं की दोहरी भूमिका के निर्वहन में होने वाली समस्याओं का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना

अध्ययन विषय को दिशा निर्देशित एवं वैज्ञानिकता प्रदान करने के लिए अध्ययन से संबंधित निम्नलिखित उप-कल्पनाओं का निर्माण किया गया है जिससे अनुसंधान को सही दिशा निर्देश मिल सकें और विषय वस्तु का विश्लेषण पूर्ण रूप से किया जा सके।

(1) आंगनबाड़ी में कार्यरत महिला शिक्षिकायें कार्यो एवं दायित्वों का निर्वाहन करने में सफल होते होंगे।

(2) आंगनबाड़ी में कार्यरत महिला शिक्षिकायें समस्या रहते हुए भी दोहरी भूमिका को निर्वाहन सफल पूर्वक करते हुए सरकार के योजनाओं को सफलता प्रदान करते होंगे।

अध्ययन का क्षेत्र

छत्तीसगढ राज्य का राजधानी रायपुर है, रायपुर से 78 कि. मी. की दूरी में धमतरी जिला है जिसका चार विकासखण्ड है, धमतरी, कुरूद, नगरी सिहावा और मगरलोड। यहॉ की जनसंख्या 7,99,199 है और क्षेत्रफल 2019 कि. मी. है। यहॉ का लिंगानुपात 1012 महिला तथा 1000 पुरूष है यहॉ की साक्षरता दर 78.95 प्रतिशत है। धमतरी में सिंचाई का साधन होने से यहॉ धान की फसल का पैदावार अधिक होता है, यहॉ प्रमुख रूप से चॉवल, गेहूं, अरहर, चना आदि का उत्पादन किया जाता है। यहॉ पर सबसे अधिक 115 चावल मिल है, तथा सबसे बडी धान मंडी है। यहाँ चावल उड़ीसा, बंगाल, आंध्र प्रदेश आदि तथा विदेशों तक निर्यात किया जाता है। यहॉ सब्जियों का भी उत्पादन बड़ी मात्रा में किया जाता है। यहाँ तेल मिल, दाल मिल व लाख के फैक्ट्री भी है। वन क्षेत्र होने के कारण बड़ी मात्रा में सागौन, सरई की लकड़ी मिलती है। छ. ग. में बीड़ी निर्माण के प्रमुख दो केन्द्रों में से एक है। यहॉ अगरबत्ती का लघु कुटीर उघोग भी अधिक संख्या में है यहाँ लकड़ी मिल व फर्नीचर उद्योग भी है।

धमतरी जिला के धमतरी विकासखण्ड से 50 आंगनबाड़ी महिला शिक्षिकाओं का चयन अध्ययन के लिए किया गया। धमतरी विकासखण्ड में 315 आंगनबाड़ी है।

अनुसंधान विधि : अनुसंधान विधि के अंतर्गत न्यादर्श का चयन, उपकरण तथ्यों का संकलन एवं तथ्यों का विश्लेषण का वर्णन किया गया है

उत्तरदाताओं का चुनाव

प्रस्तुत शोध आंगनबाड़ी में कार्यरत महिला शिक्षिकाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन है, धमतरी विकासखण्ड के विशेष संदर्भ में किया गया है। धमतरी जिले में कुल 1100 आंगनबाड़ी है जिसमें शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र शामिल है। धमतरी विकासखण्ड में 310 आंगनबाड़ी है, जिसमें से 50 आंगनबाड़ी में कार्यरत महिला शिक्षिकाओं को उत्तरदाता के रूप में यादृच्छिक न्यादर्श विधि से चुनाव किया गया।

तथ्यों का संकलन

दो स्रोतों से किया गया; *(1) प्राथमिक स्रोत-* इससे आशय साक्षात्कार अनुसूची, अवलोकल प्रविधि और उद्देश्यपूर्ण निदर्शन से है। *(2) द्वितीयक स्रोत-* सामान्य तौर पर विभिन्न पत्र पत्रिकाएं, शोध पत्रिका, शोध प्रबंध, सरकारी प्रकाशन, समाचार पत्र आदि से है।

तथ्यों का विश्लेषण : प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण हेतु मानक सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया। गुणात्मक एवं मात्रात्मक आंकड़ों को सावधानी पूर्वक कम्प्यूटर द्वारा विश्लेषण किया गया।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध आंगनबाड़ी में कार्यरत शिक्षिकाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन विषय पर आधारित है आंगनबाड़ी में बच्चों को खेल खेल में पढ़ाया जाना, प्यार व कोमलता का व्यवहार करना, प्रशंसा करना, स्वास्थ्य पर ध्यान रखना, पौष्टिक आहार देना, स्कूल छोड़ने की प्रवृत्ति को कम करना, स्वास्थ्य शिक्षा देना आदि से बच्चे प्रभावित होते है और उनका रूचि आंगनबाड़ी के प्रति बढ़ता जिससे उनका शारीरिक, मानसिक, शैक्षणिक और सामाजिक विकास पर पूर्ण रूप से प्रभाव पड़ता है, इसी तरह आंगनबाड़ी के माध्यम से महिलाओं से सम्बधित सरकारी योजनाओं का ज्ञान व लाभ आंगनबाड़ी से जुड़ी महिलाओं को होता है। जिससे महिलाओं का शारीरिक, सामाजिक व आर्थिक विकास हो रहा है। आंगनबाड़ी के शिक्षिकायें अपने कार्यो एवं दायित्वों का निर्वाहन अनेक समस्याओं के होते हुए भी पूर्ण रूप से कर रहे हैं। जिससे सरकार की योजनायें सफल होते हुए स्पष्ट हुआ किन्तु आंगनबाड़ी में कार्यरत शिक्षिकाओं के व्यक्तिगत, परिवारिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं स्पष्ट हुआ कि विभिन्न समस्याओं से जूझते हुए अपनी दोहरी भूमिका का निर्वाह करने में कठिनाई होती है। आंगनबाड़ी में कार्यरत शिक्षिकाओं के सामने जो प्रमुख समस्यायें आई वो निम्न प्रकार की हैं- परिवारिक समस्यायें, समय का अधिक लगना, अपने बच्चों की चिंता, तथा परिवार व कार्यस्थल में समांजस्य स्थापित करने में कठिनाई होती है। कार्यस्थल से संबंधित समस्या जैसे आंगनबाड़ी भवन का न होना, अधिक कार्य करना, छुट्टी कम मिलना, अशिक्षित महिलाओं को किसी योजना के बारे में समझाने में कठिनाई होना आदि समस्यायें स्पष्ट रूप से पायी गयीं। इन सभी तथ्यों से जो निष्कर्ष स्पष्ट रूप से सामने आया वो दो प्रकार का है :

(1) महिला शिक्षिकाओं के कार्यो एवं दायित्वों के उचित निर्वाहन से सरकार की योजनाएं उम्मीद से अधिक सफल हो रही हैं।

(2) आंगनबाड़ी में कार्यरत शिक्षिकाओं को विभिन्न समस्याओं से जूझते हुए अपनी दोहरी भूमिका के निर्वाह में कठिनाई होती है पाया गया।

सुझाव

आंगनबाड़ी में कार्यरत शिक्षिकाएं अपने कार्यो एवं दायित्वों का निर्वाह पूर्ण से तो कर रही हैं, जिससे सरकार की बच्चों व महिलाओं से संबंधित योजनाएं सफल हो रही हैं; लेकिन परिवार व कार्यस्थल (आंगनबाड़ी) के कार्यों के बीच सामंजस्य नहीं बैठा पा रहे हैं, अर्थात् दोहरी जिन्दगी जीने से काफी मानसिक तनाव का सामना करना पड़ता है, अगर इनकी दूर करने लायक

समस्याओं को दूर कर कुछ सुविधाएं दिया जाये जैसे- (1) सरकार के द्वारा इनकी सुविधाओं में वृद्धि की जाये। (2) वेतन और बढ़ा दिया जाये। (3) सरकारी स्कूलों जैसा छुट्टी प्रदान की जाये। (4) आंगनबाड़ी में पानी, बिजली, शौचालय की व्यवस्था की जाये।

...तो काफी हद तक आंगनबाड़ी शिक्षिकायें मानसिक तनावों से मुक्त होंगे, जिससे सरकार की योजनाओं को तन, मन लगाकर और अधिक मेहनत कर और अधिक सफल बनाने का प्रयास करेंगे, साथ ही साथ अपनी दोहरी भूमिका को भी पूर्ण रूप से निर्वाह कर अपने कार्यो व दोहरी जिन्दगी से काफी संतुष्ट होंगे।

संदर्भ

देसाई मीरा (1957)- *वूमेन इन माडर्न इंडिया,* कंपनी पं. ला. लि. मुम्बई

अली अेगतरे (1958)- *वूमेन ऑफ इंडिया,* चॉद कार्पो, प्रा. लि. न्यू दिल्ली

सत्य दूबे मिश्रा (1964)- *मनु की समाज व्यवस्था,* किताब महल, प्रथम संस्करण, कलकत्ता

कपूर प्रमिला (1975)- *भारत में विवाह और कामकाजी महिलाएं,* राजमहल प्रकाशन, नई दिल्ली

एकीकृत बचपन विकास सेवाएं योजना, शिक्षा और समाज कल्याण, भारत सरकार के समाज कल्याण मत्रालय विभाग, भारत, नई दिल्ली, 1976

खन्ना गिरजा (1978)- *इंडिया वूमेन,* टूटे विकास पब्लिशिंग, नई दिल्ली

आहूजा राम (1992)- *राइटस ऑफ वूमेन ए फेमिनिष्ट पर्सपेक्टिव,* राजत पब्लिशर्स, जयपुर, नई दिल्ली

कपाडिया के. एम. (2000)- *मैरिज एंड फैमिली इन इंडिया,* नेशनल पब्लिशर्स हाउस, जयपुर

भूषण केयर (2002)- *छत्तीसगढ के नारी रत्न,* जन चेतना प्रकाशन, सुंदर नगर, रायपुर

पॉल, डी .आई. सी. डी. एस. के. (2003)- *साधारणीकरण की ओर भारतीय,* जम्मु समुदाय मेड

हैस ए., सैंडर्स डी. और लीमैन (2007)- *सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के संभावित योगदान,* लैंसेट

गुप्ता सुभाषचंद्र (2009)- *कार्यशील महिलायें एवं भारतीय समाज,* अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

कुबेड म. वि. (2010)- *भारत में महिला शिक्षा,* शैक्षिक संवाद की पत्रिका, अप्रैल

पूणिया पिंकी (2011)- *महिला अधिकार बनाम मानवाधिकार,* योजना अंक 4, अप्रैल

गोठ के अंगना (2011)- *महिला एवं बाल विकास विभाग,* त्रैमासिक पत्रिका, अंक 5 मार्च

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,42-43
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 19 मार्च 2015

संस्थागत संगीत शिक्षा प्रणाली का स्वरुप

डॉ. गीता जोशी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *संस्थागत संगीत शिक्षा प्रणाली का स्वरुप* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *गीता जोशी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

किसी भी राष्ट्र की विकास प्रक्रिया की पृष्ठभूमि उस देश की कला, संस्कृति, साहित्य धर्म आदि की चर्चा होना स्वाभाविक सी बात है। भारतीय संस्कृति जो विश्व की महानतम् एवं प्राचीनतम् संस्कृतियों में से एक है, की नींव 'सत्यम शिवम सुन्दरम्' की अवधारणा पर अवलम्बित है। इस संस्कृति की अखंडता तथा 'वासुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को जीवित रखना ही हमारा मुख्य-लक्ष्य रहा है। संस्कृति के साथ शिक्षा स्वतः ही अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी होती है। शिक्षा जहाँ हमारे बौद्धिक ज्ञान को परिष्कृत करती है, वही कलाएँ हमारे व्यवहारिक ज्ञान एवं सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति में वृद्धि करती है। शिक्षा अर्जन के क्रम में सांस्कृतिक प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। वस्तुतः संस्कृति साध्य है और शिक्षा का अर्थ बहुत व्यापक है इसकी परिधि हमारे जीवन के प्रत्येक पहल को अपने अन्दर समेटे हुए हैं। शिक्षा और उसके प्रयोजनों की एक लम्बी श्रृंखला है, जिसे संगीत शिक्षा से सह-सम्बन्ध स्थापित करते हुए समझने की आवश्यकता है। एक और जहाँ शिक्षा व्यक्ति के विकास में सहायक सामग्री समझी गई, दूसरी ओर समाज, राष्ट्र और विश्व के सन्दर्भ में उसकी सार्थकता को खोजा गया है। यही अभिप्राय संगीत-शिक्षा के साथ लागू होता है। संगीत ने जहाँ विभिन्न माध्यमों से समाज को शिक्षित किया है, वहीं समयानुसार उसकी शिक्षा के अध्ययन की रूपरेखा भी राष्ट्र एवं समाज की आवश्यकता के अनुरूप परिवर्तित हुई है।

संगीत की बढ़ती हुई महत्ता को ध्यान में रखकर और उसके गुणों को पहचानकर ही शिक्षाविदों ने संगीत शिक्षा का महत्व समझा। संगीत के कुछ अनुरागी तथा विद्वानों ने जिन्हें शिक्षित तथा सभ्य समाज में सम्मान प्राप्त हुआ संगीत के शास्त्र तथा विद्या को जन-जन तक पहुँचाने हेतु संगीत शिक्षा का प्रचार प्रसार किया एवं संगीत सस्थाओं ने सामूहिक रूप से शिक्षा देना प्रारम्भ किया।

सामूहिक शिक्षा प्रारम्भ होने से पूर्व प्रत्येक स्थानों गुरू शिष्य प्ररम्परा थी। जिसमें शिष्यों को गुरू के पास जाकर शिक्षा ग्रहण करना पड़ता था बदले में उन्हें गुरू की कष्टप्रद निजी सेवा भी करनी पड़ती थी। हो सकता है यह सब प्रशिक्षण का अंग

* एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत गायन, महिला महाविद्यालय सतीकुण्ड [कनखल] हरिद्वार (उत्तराखण्ड) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

हो। शिक्षक की यह प्रेम श्रम के रूप में शिक्षा देने की यह भावना और छात्र की निष्ठा, शाही संरक्षण शिथिल होने के साथ समाप्त हो गई।

समाज में गायक वादकों की कैसी सोचनीय एवं अपमान जनक स्थिति है इसका अनुमान पं0 विष्णु दिगम्बर को होने लगा। उनका विचार था कि गायक मन मौजी होते हैं, वे अपनी विद्या को खुले मन से नहीं सिखाते हैं। मुक्त हस्त से संगीत सीखने का इसका एक मात्र उपाय था। संगीत विद्यालय खोलना। इस संकल्प के साथ अपने विचारों को अमल में लाने की दृष्टि से प्रयत्न करने का निश्चय किया।

संगीत को पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त कराने के लिए संगीत शिक्षा में हो रहे परिवर्तनों तथा कुछ संगीतज्ञों के शुद्ध आचरण, निःस्वार्थ भावना से ओत-प्रोत होकर संगीत सेवा में होना, इन दोनों ही बातों का समान हाथ था, और इसके लिए निम्नलिखित विशेष प्रयत्नशील थे।

बडौदा नरेश, सयाजी राव गायकवाड जिन्होंने यूरोप की प्रथम यात्रा से लौटकर सन् 1886 में सभी विद्याओं का पुनरूत्थान का काम प्रारम्भ किया, जिसमें संगीत का स्थान प्रमुख था।

उस्ताद मौला बख्श जिन्होंने स्वयं संगीत शिक्षण को समय के अनुकुल बनाने के लिए मनन-चिंतन किया और हिन्दुस्तानी संगीत में स्वर-लेखन पद्धति का सर्वप्रथम प्रयास किया।

पंडित विष्णु दिगम्बर जी ने स्वयं संगीत को अन्य विद्याओं के समान ही सम्मान प्राप्त हो इस दृष्टि से 1901 ई0 में गांधर्व महाविद्यालय के रूप में संगीत शिक्षा में महान योगदान दिया।

ग्वालियर के पं0 कृष्ण राव शंकर पंडित जी ने सन् 1914 ई0 में ग्वालियर में ही शंकर गांधर्व संगीत विद्यालय नामक विद्यालय की स्थापना की जो आज भी सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है।

पंडित भारतखण्डे जी ने 1915-16 में बम्बई में श्री शारदा संगीत मंडल की स्थापना कर संगीत की कक्षाएँ प्रारम्भ की।

ग्वालियर नरेश, माधव राव सिंधिया ने भातखण्डे जी की शिक्षा पद्धति से और क्रमबद्धता से प्रभावित होकर ग्वालियर में 1917 ई0 में माधव संगीत विद्यालय की स्थापना की।

उपरोक्त सभी आधुनिक संगीत शिक्षा की जड़े थी। इन्हीं से प्रेरणा लेकर बाद में संगीत की प्रमुख शिक्षा संस्थाओं का उद्‌भव हुआ जो आज भी अपनी पूर्ण विकसित अवस्था में संगीत शिक्षा दे रही है।

पंडित विष्णु दिगम्बर प्लुस्कर और पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे जी ने संगीत शिक्षण को संस्थागत शिक्षण प्रणाली का रूप प्रदान कर एक नई दिशा दी। जब संस्थागत प्रणाली आई तब अधिक छात्र संगीत शिक्षा की ओर आकृष्ट हुए तो किन्हीं कारण वश मन में संगीत शिक्षा पाने की लालसा रखते हुए भी गुरू शिष्य परम्परा से नहीं सीख पाए, वे अब संस्थानों में संगीत की शिक्षा प्रारम्भ होने से सरलता से अपनी इच्छा की पूर्ति कर पाए, तथा संगीत सीखा।

संस्थागत संगीत शिक्षा प्रणाली के उद्‌देश्य

◆ भारतीय शास्त्रीय संगीत को जन-जन तक पहुँचाना। ◆ जन सामान्य को परम्परागत शिक्षण की कठिनाई से बचाना। ◆ संगीत कलाकारों को जीवन यापन का साधन देना। ◆ संगीत के माध्यम से सरल, सौम्य मानव बनाना। ◆ भारतीय संगीत की धरोहर को बचाना।

संदर्भ ग्रंथ सूची

प्रो0 हरिशचन्द्र श्रीवास्तव- *संगीत निबन्ध संग्रह*

डॉ0 सुरेश गोपाल श्रीखण्डे- *हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायन की शिक्षा प्रणाली*

सक्सेना डॉ0 मधुबाला- *भारती शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर,* हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,44-47
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 मार्च 2015

जय-जगत् : विश्वव्यापी समाज की कल्पना

ज्योति गुप्ता*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *जय-जगत् : विश्वव्यापी समाज की कल्पना* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *ज्योति गुप्ता* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

आज सम्पूर्ण मानव सभ्यता एक असाधारण युग में जीवनयापन कर रही है। यह युग साधारण रूप से हिंसा, उत्तेजनाओं और चुनौतियों से भरा है। यदि मानवजाति के लिए शांति प्रथम आवश्यकता रही है तो हिंसा, आतंक और अंततः युद्ध उसकी मूलभूत समस्या। आज दुनिया में जो तनाव है उसका एक प्रमुख कारण परस्पर अविश्वास भी है। विज्ञान और तकनीकी के परिणामस्वरूप दुनिया एक जैसी तो बन गई है, किन्तु पड़ोसीपन का भाव अभी पैदा नहीं हुआ है और यह विज्ञान के बस की बात भी नही है। हार्दिकता और मैत्री के अभाव में अविश्वास पनपता है। विनोबा कहते थे कि विज्ञान के युग में विश्वास का वही स्थान है जो स्थान शरीर में श्वास का होता है। उसके लिए उन्होने वैश्विक मंत्र दिया था- 'जय-जगत्'। यह मंत्र वैश्विक चिंतन और विश्ववृत्ति के विकास का प्रेरक बना। विनोबा का विचार है कि सारी दुनिया की मूल समस्या आज शांति स्थापना की है। शायद ही किसी जमाने में आज जैसी शांति की भूख दुनिया को रही हो। जो देश कल तक बिल्कुल हिंसा के विचार में डुबे हुए थे, वे आज हिंसा से मुक्ति पाना चाहते है। आज भी वे शस्त्रास्त्र बढ़ाते है, फिर भी उससे मुक्ति कैसे होगी, यह सोच रहे है। शस्त्र क्यों बढ़ा रहे है? आदत से लाचार है।[1]

विनोबा का मानना है कि आज समाज का पुराना स्वरूप बदल गया है और विज्ञान का युग आया है। तरह-तरह के घातक अस्त्र-शस्त्र का निर्माण हो चुका है जिसके द्वारा घर बैठे ही समस्त विश्व का विनाश किया जा सकता है। विनोबा का कहना है कि, "अगर विज्ञान के साथ अहिंसा जुड़ जाए, तो दुनिया में स्वर्ग आयेगा। लेकिन हिंसा उसके साथ जुड़ जाती है, तो सब बर्बादी है।"[2] गाँधी का भी मानना है कि अणुबम ने उस उत्कृष्टतम भावना को निर्जीव कर दिया है जिसने मानवजाति को युगों से जीवित रखा है। अणुबम ने सभी प्रकार की हिंसा की व्यर्थता को सिद्ध कर दिया है। गाँधी का कहना है कि, ''अणुबम की भीषण त्रासदी से हम यह सीख ले सकते है कि इसका खात्मा किसी जवाबी बम से नहीं होगा, वैसे ही जैसे हिंसा का खात्मा

* राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उ. प्र.) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्रतिहिंसा से नहीं होता। मानवजाति केवल अहिंसा के जरिए ही हिंसा पर विजय पा सकती है। घृणा को प्रेम से ही जीता जा सकता है।''[3]

अतः इस विज्ञान के युग में छोटे-छोटे अस्त्रों के आधार पर शांति की स्थापना की कल्पना ही बेकार है। ऐसे युग में मानव हृदय में सुक्ष्म परिवर्तन की आवश्यकता है, जो सत्य, प्रेम और करूणा के आधार पर ही हो सकता है। विज्ञान की शक्ति की ओर इशारा करते हुए विनोबा कहते है, "आज हमारा जिन्दा रहना या मरना चंद लोगों के हाथ में है। उनमें से किसी एक की बुद्धि बिगड़ गयी, तो हमारा जीवन खतरे में है। फिर हमारी अक्ल नहीं चलेगी। उस राक्षस पर हमारा सारा जीवन आधारित है।.....उसके हाथ में शस्त्र देकर उस पर हमारी कुल जिम्मेदारी डालकर हमने ही उसको राक्षस बनाया है और हम बिल्कुल अनाथ बन गए है।"[4] इस प्रकार मानव हृदय में परिवर्तन करके तथा विज्ञान की सही दिशा में प्रयोग करके उसे अहिंसा के साथ जोड़ दे तो विज्ञान से होने वाले विनाश से बचा जा सकता है।

यूरोप में जब अर्वाचीन राष्ट्रवाद का उदय हुआ, तब से भौगोलिक, भाषिक और जातीय पृथकता या अलगाव की भावनाओं ने जोर पकड़ा और उसने व्यावर्तक राष्ट्रवाद का जन्म ले लिया। व्यावर्तक का मतलब है अपने में दूसरे को शामिल न करना। यह स्वाभाविक ही था कि इसमें से क्षुद्र अहंता पैदा हो। इस राष्ट्रीय अहंवाद से ही जागतिक व्यापारवाद और साम्राज्यवाद का जन्म हुआ, जिससे आज भी धरती उत्पीड़ित है।[5]

विनोबा के अनुसार विश्वबन्धुत्व की भावना को जागृत करने के लिए यह आवश्यक है कि उप-निवेशों की जनता को पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता दे दी जाए। जब तक संसार के शक्तिशाली राष्ट्र उप-निवेशों और दलित राष्ट्रों को निजी सम्पत्ति समझते रहेंगे, जब तक साम्राज्यवाद का तथा साम्राज्यवाद से और साम्राज्यवाद का राष्ट्रवाद से संघर्ष जारी रहेगा और विश्वशांति मृग-मरीचिका सी नित्य प्रति दूर हटती जायेगी।[6]

परन्तु विनोबा के अनुसार राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद तक ही हमारी कठिनाइयों का अंत नहीं हो जाता। विश्वशांति के मार्ग में दूसरी भी अड़चनें हैं। एक तरफ मानव परिवार पूर्व-पश्चिम, काले और गोरे के भेदभाव में पड़कर छिन्न-भिन्न पड़ा है तो दूसरी ओर भौतिकवाद, आर्थिक लोलुपता और शोषण का रूप धारण किए संसार को संतप्त कर रहा है। इस लूट-खसोट की दुनिया में शांति का विचार उत्पन्न ही नहीं हो सकता। विनोबा के शब्दों में, 'स्थायी शांति तो तभी संभव है जब पृथ्वी पर रहने वाले अधिकांश मनुष्य इस बात का प्रयत्न करें कि हमारे बीच अंशाति न फैलने पाए, किन्तु मानव आत्मा तो आज सुप्तावस्था में है। सतत् प्रयत्नशील केवल थोड़े से लोग है, जिनका स्वार्थ इस बात में है कि संसार में हर समय कहीं-न-कहीं युद्ध, कलह और उपद्रव होता रहे।'[7]

राष्ट्रवाद एक चीज है, राष्ट्रधर्म बिल्कुल अलग चीज है। 'वाद' में परहेज की बू आती है। वह उद्दण्ड और आक्रमणशील होता है। 'धर्म' में सख्य और सौहार्द्र की सौम्य सुगन्ध होती है। यह सबको जोड़ता है, तोड़ता किसी को नहीं। मनुष्य मात्र को जुटाता है, छाँटता किसी को नहीं। इसलिए भारतीय राष्ट्रधर्म व्यापक मानव धर्म के हमेशा अनुकूल रहा। इस विश्वधर्म में और आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीयता में मूलभूत अंतर है। अन्तर्राष्ट्रीयता में भिन्न-भिन्न राष्ट्रों का समन्वय है। व्यापक मानवधर्म या विश्वधर्म में सभी देशों के नागरिक संसार के नागरिक बनकर निरूपाधिक मानव में परिणत हो जाते है, यही विनोबा का 'विश्व मानव' है।[8]

आचार्य विनोबा का चिन्तन विश्वशांति एवं विश्वकल्याण की भावना से ओतप्रोत है। अपने चिन्तन में उन्होने मंगलमय विश्व की परिकल्पना की है। उनका उद्देश्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना है जिसकी आधारशीला करूणा, प्रेम, त्याग, सहयोग एवं शांति हो। सन् 1958 में कर्नाटक की ग्रामदान पदयात्रा में उन्होंने जय-जगत् मंत्र का उद्घोष किया। इसके पश्चात् न केवल भारत अपितु भारत के बाहर विश्व के कई राष्ट्रों में भी जय-जगत् की गुँज होने लगी। जय-जगत् मंत्र ने भारत को राष्ट्रगत सीमा से ऊपर उठाकर विश्वगत भावना की ओर उन्मुख और प्रेरित किया। जय-जगत् की व्यापकता को समझाते हुए विनोबा ने कहा था, ''जय-जगत् याने क्या? 'सारी दुनिया की जय हो।' एक की जय में दूसरे की भी जय हो। सबकी जय हो। यह सिर्फ बोलने की बात नहीं करने की है। इसके लिए क्या करना होगा? आज हमारा दिमाग बहुत बड़ा बना है, पर दिल छोटा है। इसलिए दिल भी उतना बड़ा बनाना होगा। आज ये जो सारे झगड़े चल रहे हैं, वे सब बड़े दिमाग और छोटे दिल की पैदाइश है।''[9]

विनोबा का मानना है कि जय-जगत् कोई नारा नहीं है क्योकि नारे एक दूसरे से टकराते हैं। इसलिए वे इसे नारा नहीं बल्कि अरबी में जिसे 'कौल' कहते हैं या संस्कृत में 'मंत्र' कहते हैं, मानते हैं। विनोबा का मानना है कि, ''पुराना तरीका यह था कि एक के जीत में दूसरे की हार होती थी लेकिन अब हमने नया तरीका निकाला है जिसमें आपकी, हमारी, सामने वाले की, सबकी जीत है। इसलिए सर्वोदय का कौल है 'जय-जगत्'।''[10]

एक बार संत विनोबा से मिलने आजाद हिन्द फौज सेना के एक भाई आए। उन्होंने सलाम करते हुए कहा, 'जय हिन्द'। संत विनोबा को भी जवाब में सलाम करना था, विनोबा ने कहा, 'जय-हिन्द', 'जय-जगत्', 'जय-हरि'। विनोबा ने बताया कि जय-हिन्द भी छोटा नारा साबित हो सकता है। ऐसा जमाना आ गया है। जय-हिन्द तभी सही है जब उसके साथ जय-जगत् भी जुड़ा हो। अपने देश की जय में दूसरे देश की पराजय न हो। फिर दुनिया इतनी पागल बन सकती है कि परमेश्वर को भी भूल जाय, इसलिए उसके साथ 'जय-हरि' भी जोड़ दिया गया। जय-हरि गहराई है और जय-जगत् व्यापकता। जय हिन्द तो बहुत छोटी चीज हो गयी है।[11]

इसी प्रकार विनोबा की सन् 1959 में कश्मीर की पदयात्रा हो रही थी और वह सीमा से उत्तर की ओर पैदल जा रहे थे। उस समय विनोबा ने कहा कि इतने जोरदार बुलन्द आवाज में 'जय-जगत्' बोलो कि सीमा पार के भाई-बहनें भी सुन सके कि हिन्दुस्तान के लोग अब जय-जगत् कह रहे है सिर्फ 'जय-हिन्द' नहीं। 'जय-जगत्' की लपेट में पाकिस्तान की भी जय आती है। अमेरिका, रूस, चीन इत्यादि का भी अर्थात् सभी देश की जय।[12]

'वसुधैव कुटुम्बकम्' की इकाई मानव आज अपूर्ण बन गया है। इसके जीवन के तीनों आयाम सत्य, भौतिक विज्ञान और कर्मशक्ति अपूर्ण है। इन तीनों आयामों की अपूर्णता समझने, उसका निवारण करने और तीनों का एकत्व साधने से ही मानव पूर्णता की यात्रा पर अग्रसर होगा और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को पूर्णता प्राप्त हो सकेगी। जीवन की पूर्णता है- ''बुद्धं शरणम् गच्छामि। शुद्धं शरणम् गच्छामि। सिद्धं शरणम् गच्छामि।''

संत विनोबा ने इसकी स्पष्टता करते हुए कहा कि विज्ञान निष्ठा से मनुष्य बुद्ध बनेगा, मानव सेवा से शुद्ध बनेगा ओर विश्व चेतना से सिद्ध बनेगा। लेकिन यह हो कैसे? इसके लिए संदेह शक्ति, संकल्प शक्ति और श्रद्धा का जागरण आवश्यक है। संदेह शक्ति से वैज्ञानिक प्रवृत्ति का विकास होगा। शुभ संकल्प शक्ति से मानव सेवा की प्रवृत्ति होगी और श्रद्धा शक्ति से चेतना प्रवाहित होने लगेगी। इसके लिए परिवारमूलक, ग्राम परिवार प्रधान, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श के अनुरूप जीवन जिया जा सकता है।[13]

इस प्रकार जय-जगत् मंत्र ने मानव को राष्ट्रगत सीमा से ऊपर उठाकर विश्वगत भावना की ओर उन्मुख और प्रेरित किया। सारी मानवजाति का कल्याण, विकास, संरक्षण और सुव्यवस्था विश्व राज्य की इकाई में है। इसलिए सन् 1974 में लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने जय-जगत् के संबंध में विचारणीय और करणीय विषयों की सूची बनायी थी। संत विनोबा ने उसको स्वीकृति दी थी और उन्हीं की उपस्थिति में ब्रह्म विद्या मंदिर, पवनार (वर्धा) में एक गोष्ठी आमंत्रित की थी परन्तु बिहार आंदोलन होने की वजह से वह नहीं हो सकी।

जयप्रकाश नारायण द्वारा प्रस्तावित विचारणीय मुद्दे [14]

(I) जय-जगत् के क्षेत्र में अध्ययन के प्रमुख विषय :

1. संयुक्त राष्ट्र संघ और उसकी शाखाओं, उप-शाखाओं का (क) इतिहास (ख) कार्यपद्धति (ग) समस्याएँ तथा (घ) सम्भावनाएँ।
2. विश्व के सन्दर्भ में शांतिमय क्रांति के प्रयोग और अहिंसक समाज रचना की खोज तथा उसके विभिन्न प्रयोग।
3. विश्व के वर्तमान शांति केन्द्र और उनके उद्देश्य- (क) चीन (ख) रूस (ग) अमेरिका (घ) जापान (ड़) यूरोपीय संघ (च) भारत तथा (छ) अन्य तटस्थ राष्ट्र समूह।
4. विश्व राज्य व विश्व संघ की कल्पना को साकार करने की खोज।
5. क्षेत्रीय आर्थिक क्षेत्रों में सहयोग।
6. पारिस्थतिकी के सन्दर्भ में विश्व की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं का अन्वेषण और मूल्यांकन तथा उनके समाधान के लिए समाज रचना में बुनियादी क्रांति की आवश्यकता।

7. विश्व संस्कृति की दृष्टि से सब राष्ट्रों और विशेषकर पड़ोसी राष्ट्रों की भाषा, संस्कृति, समाज जीवन तथा समस्याएँ जानना और जोड़ने वाली कड़ियों की खोज करना; जैसे- (क) नागरी की वैज्ञानिकता तथा (ख) एशिया की भाषाएँ और नागरी।
8. विज्ञान और आत्मज्ञान इन दोनों धाराओं का सहयोग कैसे हो, इसका चिन्तन।

(II) जय-जगत् के क्षेत्र में करने के कुछ विषय :

1. संयुक्त राष्ट्र संघ की सशस्त्र सेना के स्थान पर शांति सेना के निर्माण का प्रयास करना।
2. संयुक्त राष्ट्र संघ में 'जन प्रतिनिधि मिशन' की स्थापना का प्रयास करना।
3. संयुक्त राष्ट्र संघ में [No War Resolution] सर्वसम्मत से स्वीकृत हो।
4. शांतिमय क्रांति और अहिंसक, शोषणरहित, समतामूलक, स्वावलम्बी समाज रचना की खोज व प्रयोग करने वाले व्यक्ति, संस्था तथा समूहों से सम्पर्क करना और सबको जोड़ने का प्रयास करना।
5. पड़ोसी राष्ट्रों से सम्पर्क बढ़ाना और ए.बी.सी. अफगानिस्तान, बर्मा, सिलोन की कल्पना को साकार करने की दिशा में प्रयास करना।
6. पूर्व एवं दक्षिण पूर्व एशिया में नागरी लिपि का प्रचार करना।
7. जय-जगत् की लक्ष्य प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा आज का आर्थिक साम्राज्यवाद, खुला बाजार, वैश्वीकरण आदि है। इसके प्रतिकार के बिना जय-जगत् सम्भव नहीं है।

जयप्रकाश ने कुछ मुद्दों को संयुक्त राष्ट्र संघ में पहुँचाने का प्रयत्न किया उनमे प्रमुख ये तीन थे:[15]

1. संयुक्त राष्ट्र संघ की सशस्त्र सेना के स्थान पर शांति सेना के निर्माण का प्रयास करना।
2. संयुक्त राष्ट्र संघ में 'जन प्रतिनिधि मिशन' की स्थापना का प्रयास करना।
3. संयुक्त राष्ट्र संघ में [No War Resolution] सर्वसम्मति से स्वीकृत हो, इसके लिए प्रयास करना।

भावना और संकल्प विश्वव्यापी, परन्तु आचरण क्षुद्र संकीर्ण भेदों से प्रेरित, यह मानवजाति का विशिष्ट स्वभाव दोष रहा है। यह स्वभाव दोष 'जय-जगत्' को भी क्षुद्र क्षेत्रवाद से संकीर्ण, जातिवाद तथा व्यावर्तक सम्प्रदायवाद से नष्ट भ्रष्ट कर सकता है। सम्बोधन में शक्ति नारेबाजी से नहीं आती, अन्तःकरण के प्रत्यय से और निष्ठायुक्त अनुष्ठान से आती है। दुनिया के आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक जीवन में 'जय-जगत्' का तत्व प्रत्यक्ष रूप से यदि अभिव्यक्त होगा, तो 'जय-जगत्' का सम्बोधन उदात्त मानवीय भावना का प्रवर्तक सिद्ध होगा, अन्यथा हमारे दूसरे सारे उद्घोषों की तरह वह भी खोखला पाखण्ड मात्र होगा।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

[1]विनोबा (2003)- *शांति सेना,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 24

[2]वही, पृष्ठ संख्या 41

[3]वही, पृष्ठ संख्या 40

[4]आर.के. प्रभु एवं यु.के. राव (1994)- *महात्मा गाँधी के विचार,* नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, पृष्ठ संख्या 212

[5]जनार्दन पाण्डेय (1986)- *सर्वोदय का राजनीति दर्शनः आचार्य विनोबा व दादा धर्माधिकारी के विचारों के परिप्रेक्ष्य में,* जानकी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 255

[6]विनोबा भावे (1955)- *कार्यकर्ता वर्ग,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 10

[7]विनोबा भावे (1958)- *जय जगत्,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 3

[8]वही, पृष्ठ संख्या 3-4

[9]विनोबा (1996)- *मोहब्बत का पैगाम,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 94

[10]वही, पृष्ठ संख्या 96

[11]कृष्णराज मेहता, आचार्य शरद कुमार साधक, डॉ. प्रियंकर उपाध्याय, प्रो. रामशकंर त्रिपाठी एवं डॉ. रंजनकुमार शर्मा (संपा.), (2001), *जय-जगत् संदेश,* केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 15

[12]वही, पृष्ठ संख्या 16

[13]वही, पृष्ठ संख्या 38

[14]वही, पृष्ठ संख्या 65

[15]वही, पृष्ठ संख्या 66

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,48-49
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 अप्रैल 2015

उत्तर प्राचीन काल में चाहमानों में जैन धर्म का प्रचार

डॉ. सुम्बुला फिरदौस*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *उत्तर प्राचीन काल में चाहमानों में जैन धर्म का प्रचार* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सुम्बुला फिरदौस* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

इस युग में जैन धर्म प्रगति पर था, अनेक राजाओं ने जैन धर्म को प्रोत्साहित किया। जैन आचार्यों ने सुधारवादी आन्दोलन चलाया। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य हरिभद्रसूरि एवं उनके शिष्य उधोतनसूरि ने साहित्यिक रचनाओं के द्वारा इस धर्म को लोकप्रिय बनाया हरिभद्रसूरि ने समराइच्च कहा, धूर्ताख्यान, आवश्यकटीका आदि ग्रंथों की रचना की। हरिभद्र सूरि राजस्थान में चित्रकूट के राजा जितारि के धर्मगुरू थे बाद में उन्होंने जैन धर्म स्वीकार कर लिया।[1] उधोतनसूरि ने कुक्लयमाला ग्रंथ की रचना की, उक्त ग्रंथ की रचना उधोतनसूरि ने राजस्थान में जाबालिपुर नामक स्थान में स्थित ऋषभ नाथ नामक मंदिर में की, इस मन्दिर का निर्माण रविभद्र ने किया।[2] सिद्धषिसूरि का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है, जिन्होंने जैन कथा काव्य उपमितिभव-प्रपंचाकथा की रचना की।[3]

इस युग में खरतर आचार्यों के लेखों से विधिचैत्य सुधारण आन्दोलन के प्रयत्न दिखाई देते हैं। अनेक जैन आचार्यों ने शैव एवं वैष्णव धर्मावलम्बी राजाओं के राज्य मेंधर्म का प्रचार किया। हरिभद्रसूरि ने पाया कि अनेक मठों चैत्यों एवं जैन मंदिरों में रहने वाले जैन साधुओं ने कुरीतियाँ व्याप्त थीं, वे धार्मिक कार्यों के लिये दिये जाने वाले धन का व्यक्तित्व आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रयोग करते थे। सुगन्धित एवं रंगीन वस्त्रों का प्रयोग करते थे एवं स्वादिष्ट भोजन ग्रहण करते थे तथा धार्मिक शास्त्रार्थों से वे कतराते थे। हरिभद्रसूरि ने उनका विरोध किया एवं धर्म को गम्भीरता से अपनाने पर जोर दिया।[4] जिनेश्वरसूरि ने खरतर का खाका तैयार किया एवं धार्मिक वाद विवाद में चैत्वासिन को चालुक्य राजवंश के शासक दुर्लभराज के राजसभा में पराजित किया। अभयदेव ने जैन अंङ्ग पर टीका लिखी।[5] इससे यह प्रकट होता है कि जैन आचार्यों ने रचनाओं एवं प्रवचनों के द्वारा जैन धर्म का प्रचार किया।

कुवलयमाला के कथानक से पता चलता है कि राजस्थान का भीन्नमल नामक स्थान जैन तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध था। अजमेर नगर के पास वर्ली नामक नगर की खुदाई से वीर सम्वत् 84 का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है, इस

* पूर्व-शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग, राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

शिलालेख से पता चलता है कि यहाँ अशोक के पहले से जैन धर्म प्रचलित था।[6] चौहान वंश के शासकों ने जैन धर्म को संरक्षण दिया। अनेक जैन मंदिरों का निर्माण करवाया एवं जैन साहित्य के सृजन में योगदान दिया। पृथ्वीराज-I ने शैव अनुयायी होने पर भी जैन धर्म को संरक्षण दिया। उसने रणथम्भौर में स्थित जैन मंदिर केशीर्ष में कनक कलश की रचना की।[7] *पृथ्वीराजविजय* से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज प्रथम ने सोमनाथ मंदिर के मार्ग में अन्नसूत्र स्थापित किया।[8] चाहमान शासक अजय पाल ने अजयमेरू नगर की स्थापना की। उसने पार्श्वनाथ मंदिर के निर्माण के लिये स्वर्ण कलश दान दिया एवं जैन अनुयायियों को स्वयं द्वारा स्थापित नगर में जैन मंदिर बनवाने की अनुज्ञा दी। अजय पाल ने दिगम्बर एवं श्वेताम्बर अनुयायियों में होने वाले शास्त्रार्थ की अध्यक्षता की। इससे सिद्ध होता है कि वह जैन धर्म का विश्वास भाजन था।[9] अर्णोराज जैन धर्म के प्रति सहिष्णु था। देवघोष एवं धर्मघोष को उसके समय के प्रकाण्ड विद्वान थे।[10] धर्मघोषसूरि आचार्य को उसने संरक्षण दिया।

अजमेर में खरतरगच्छ के अनुयायियों के लिये उसने दान दिया एवं पुष्कर में बराह मंदिर का उसने निर्माण करवाया। *प्रभावक चरित* से ज्ञात होता है कि अर्णोराज ने अपनी पुत्री जल्हणा देवी का विवाह कुमार पाल से कर दिया जिसे जैन धर्म से उन्मुख बताते हैं।[11] चाहमान शासक विग्रहराज ने जैन बिहार बनवाये, उनके उत्सवों में भाग लिया धर्मघोष सूरि के आदेश से एकादशी के दिन पशूवध पर उसने प्रतिबन्ध लगाया।[12] *रवि प्रभाचार्य की धर्मघोषसूरि स्तुति* से ज्ञात होता है कि विग्रहराज चतुर्थ ने एक विजय स्तम्भ अजमेर के एक जैन मंदिर में लगवाया, जिसमें मावा के राज ने उसे सहयोग प्रदान किया।[13] विग्रहराज चतुर्थ के पश्चात् पृथ्वीराज-II शासक बना उसने बिजौलिया के पार्श्वनाथ के मंदिर के लिये मोरझरी नाम के ग्राम को अनुदान में देकर कृत्य अनुभव किया, उसने धर्म सहिष्णु नीति को मान्यता दिया।[14] चाहमान नृपति सोमेश्वर ने भी जैन धर्म के प्रति आस्था प्रदर्शित की, उसके पुत्र विक्रमादित्य के समय में पद्मनाभ नामक मंत्री की अध्यक्षता में जिनपतिसूरि एवं पद्मप्रभासूरि के बीच शास्त्रार्थ हुआ, पद्मप्रभासूरि के विजयी होने पर पुरस्कृत किया गया।[15]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि इस काल में जैन आचार्यों ने सुधारवादी आन्दोलन के द्वारा जैन धर्मानुयायियों को सही मार्ग-दर्शन दिया। अनेक रचनाओं के द्वारा जैन धर्म की महत्ता सिद्ध की। चाहमान शासकों ने जैन आचार्यों को संरक्षण देकर इसकी गति को आगे बढ़ाया। अनेक जैन मंदिरों के निर्माण से भारतीय स्थापत्य कला समृद्ध हुई।

संदर्भ ग्रंथ

[1]समराइच्च कहा एक सांस्कृतिक अध्ययन- झिनकू यादव, पृष्ठ संख्या 3-5
[2]कुवलयमाला कहा, पृष्ठ संख्या 18-20
[3]राजस्थान का इतिहास- गोपीनाथ शर्मा, पृष्ठ संख्या 120
[4]अर्ली चौहान डायनेस्टी, पृष्ठ संख्या 250
[5]अर्ली चौहान डायनेस्टीज, पृष्ठ संख्या 251
[6]जैन धर्म की ऐतिहासिक रूपरेखा, पृष्ठ संख्या 125
[7]अर्ली चौहान डायनेस्टीज, पृष्ठ संख्या 38
[8]अर्ली चौहान डायनेस्टीज, पृष्ठ संख्या 120
[9]चाहमान प्रशस्ति- अजमेर, श्लोक-2
[10]द्वयाश्रब्य महाकाव्य, पृष्ठ संख्या 16-18
[11]प्रभावक चरित, पृष्ठ संख्या 865
[12]अर्ली चौहान डायनेस्टीज, पृष्ठ संख्या 256
[13]भारतीय अध्ययन संस्थान, जर्नल; भाग-3, पृष्ठ संख्या 46
[14]उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग-1, पृष्ठ संख्या 60-61
[15]भारतीय अध्ययन संस्थान, जर्नल; भाग-8, पृष्ठ संख्या 47

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,50-53**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 10 अप्रैल 2015

जगदीश स्वामीनाथन के कला विकास का समीक्षात्मक अध्ययन

सन्तोष कुमार* एवं डॉ. प्रसन्न पाटकर**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *जगदीश स्वामीनाथन के कला विकास का समीक्षात्मक अध्ययन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *सन्तोष कुमार एवं प्रसन्न पाटकर* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

विषयवस्तु

मानव मन में सतत विचार उत्पन्न होते रहते हैं, उन विचारों की अभिव्यक्ति का एक मात्र साधन और माध्यम रेखा और रंग हैं। कलाकार के मन में उन विचारों की अभिव्यक्ति का एक मात्र साधन और माध्यम रेखा और रंग हैं। कलाकार के मन में जो विचार उत्पन्न हो विचार उत्पन्न होता हैं, उसे वह आकृति विशेष के स्वरूप पर अपनी पेंसिल व तूलिका चला देता हैं। भारत के महान चित्रकार जगदीश स्वामिनाथन के प्रथम आधुनिक चित्रकार माना जाता है। जगदीश स्वामीनाथन, भारतीय आधुनिक चित्रकारों में प्रमुख स्थान रखने वाले बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। इनमें चित्र कला के साथ लेखन, राजनीतिक, कुशल वक्ता, संम्पादक आदि गुणों का समावेश था। जगदीश स्वामिनाथन ने हमेशा अपनी कला में प्रयोग किया। जगदीश स्वामिनाथन के चित्र विभिन्न चरणों में इतिहास को परिवर्तित करने, उसे नकारने, उससे उबरने का प्रयास कर रहें हैं।

जगदीश स्वामीनाथन की कला का विकास क्रम

जगदीश स्वामीनाथन की कला का प्रथम चरण सन् 1959 के करीब आरम्भ हुआ। जब वे प्रागैतिहासिक कला की बिम्ब योजना तथा आदिम सभ्यता के टोटम चिन्हों का प्रयोग करते थे। उस समय जगदीश स्वामीनाथन कला के जादुई प्रभावों पर ही विचार करते थे। दूसरे चरण में उनका ध्यान, भारत की लोक कला पर तथा आदिवासी संस्कृतियों की ओर गया, जिनके प्रतीकों तथा प्रतिमाओं के उन्होनें जादुई प्रभाव से देखा तथा ये प्रागैतिहासिक चिन्हों, बिम्बयोजना, आदिम चिन्हों, टोटम चिन्हों का प्रयोग

* शोध छात्र, ललित काला विभाग, म. गा. चि. ग्रा. वि. वि. [चित्रकूट] सतना (मध्य प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल) E-mail : skeshari82@gmail.com
** असोसिएट प्रोफेसर, एम. जी. सी. जी. वी. चित्रकूट सतना (मध्य प्रदेश) भारत। E-mail : drppatkar@gmail.com

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

करने लगे। जिसमें ओम, स्वास्तिक, कमल, लिंग, सर्प तथा हाथ की छाप प्रमुख रहें। इनमें बड़े आकारों तथा गहरे तीखे रंगो का गाढ़ा प्रयोग किया। बाद में इन्होंने भारतीय लोक कला तथा आदिवासी संस्कृति के प्रतीकों तथा चिन्हों को अपनाना प्रारम्भ किया।

आरम्भिक चित्रों में पैलेट नाइफ का इस्तेमाल किया, इसके पश्चात स्वामीनाथन काल्पनिक ज्यामितीय चित्रण करने लगे, इन चित्रों को स्पेस की ज्यामिती (Color space of Geometry) कहा गया। इन चित्रों के पीछे निश्चित रूप से तांत्रिक प्रभाव हैं। इनके चित्र कला रूपात्मक रही है, जिनकी प्रायः पुनरावृत्ति हुई है, लेकिन इन चित्रों की पुनरावृत्ति दर्शको को अखरती नहीं है। चित्रण तकनीक जलरंग के समान है तथा रंग योजनाएं हल्की तथा पारदर्शी हैं। पृष्ठ भूमि सपाट तथा द्वि-आयामी है, स्वामीनाथन के अनुसार, ''मैने रंग तथा खाली स्थान के मध्य में सम्बन्ध स्थापित किया है।''

चित्रों में पीले, चमकीले लाल, कत्थई, हल्दिया, हल्का हरा, बैगनी, भूरा आदि का अधिक प्रयोग हुआ है, शायद इनसे पहले किसी ने इस प्रकार से पीले तथा चमकीले सादे रंगों का इतना बढ़िया प्रयोग किया है।

स्वामीनाथन ने प्रकृति से प्रतीकों का चयन करके आड़े तिरक्षे कोमल पारदर्शी तथा विशाल आकार के पर्वतों का चित्रण किया, जिन्हें गुरूत्वाकर्षण से मुक्त हो कर आकाश में बड़े सहज भाव से विचरण करते दिखाया गया है। कभी इनपर कोई पंक्षी अंकित है तथा पर्वत के नीचे या पहाड़ी के शिखर पर एक पुष्पित झाड़ी अथवा कोई पौधा रहता है, आकाश में कोई वृक्ष आदि-आकाश में पक्षी उड़ती हुई सी तथा स्थिर सी प्रतीत होती है। स्वामीनाथन के चित्र हमें सम्पूर्ण अतीन्द्रिय लोक में ले जाती है, स्वामीनाथन की कृतियाँ इनकी पहचान थी। आपके चित्रों में आदिम टोटम आदि के चिन्हों के प्रयोग, अन्तरिक्ष की ज्यामिती के पीछे का दर्शन तथा आप का दर्शन, विचारों का तीव्रता से प्रस्तुतिकरण महत्वपूर्ण है तथा आप ने रूपंकर भारत भवन भोपाल में निदेशक के तौर में बिताये गये समय में लघु चित्रों का एवं आदिवासी संस्कृति चित्रण को प्रोत्साहित करने हेतु मध्य प्रदेश के जंगलों में खोज किया। वह व्यक्ति जिसका जन्म महानगर में हुआ हमेशा महानगर मे रहने का मौका मिला वह व्यक्ति आदिवासी चित्रण को विश्व कला परिदृश्य स्थान दिलाने के लिये जंगलों में रहा, आखिरकार जगदीश स्वामीनाथन के प्रयासों के फलस्वरूप, आज आदिवासी चित्रकला को उचित स्थान प्राप्त हुआ साथ ही आपके चित्रों में उनके कलात्मक तत्व को खोजा, जिनसे उनकी मौलिकता एवं उत्कृष्टता को समझा जा सके। आकाश में उड़ती पक्षी जैसी कोई वस्तु जो उड़ती सी भी हैं और स्थिर सी भी हैं। चित्र का सम्पूर्ण प्रभाव अतीन्द्रिय लोक में ले जाता हैं। इन चित्रों के द्वारा जगदीश स्वामीनाथन ब्रह्माण्ड के अभी तक अनुभूत पक्षों का अनुभव करना चाहते हैं। चित्रों में अंकित वस्तुएं केवल रंग के चमकदार धब्बे हैं एवं चित्र देखते देखते हमारे सामने से वस्तुओं का रूप अदृश्य हो जाता हैं और केवल रंग का धब्बा शेष रह जाता हैं बिम्ब छिप जाता हैं प्रतिबिम्ब रह जाता हैं।

जगदीश स्वामीनाथन के कुछ प्रमुख चित्र जो जगदीश स्वामीनाथन के विभिन्न चरण का स्मरण कराते है।

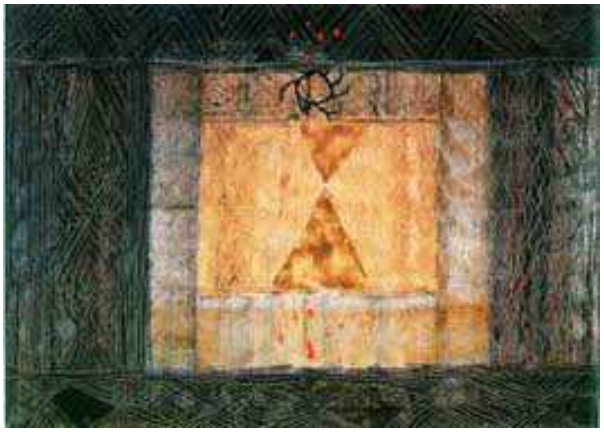

जगदीश स्वामीनाथन के चित्रों को मुख्यतः चार चरणों में विभाजित कर सकते हैं। पहले चरण में 1959 के आसपास प्रागैतिहासिक काल तथा आदिम टोटमिक संकेत भाषा से मेल खाते बिम्ब रूप रचे हैं इस चरण में जगदीश स्वामीनाथन अपने इस रूचि का संकेत देते हैं कि वह कला में तर्कणावादी आवेग की अपेक्षा जादुई आवेग के अधिक निकट हैं।

दूसरे चरण में जगदीश स्वामीनाथन भारतीय लोक व जनजातीय संस्कृति की ओर उन्मुख होते हैं। विशेषतः जगदीश स्वामीनाथन ऐसे बिम्बों संकेतों की अवधारणा करते हैं, जिनका प्रभाव जादुई हैं। लोक अभिप्रायों की प्रतिकृतियां तैयार कर जगदीश स्वामीनाथन अपने को इतिहास के निकट लाते हैं।

तीसरे चरण में अमूर्त चित्रण का दौर आया, अमूर्तन का यह दौर इसलिये उल्लेखनीय है, क्योंकि इस दौरान जगदीश स्वामीनाथन चित्र बनाने की जो तकनीक अपनायी उसका बाद में उपयोग हुआ। जगदीश स्वामीनाथन की रंग पट्टिका में गुलाबी बैगनी हल्का हरा तथा हल्का पीला रंग ही रह गये तथा जगदीश स्वामीनाथन पूरी तरह रंगो के सन्दर्भ मे ही चित्रों की परिकल्पना की।

1968 में जगदीश स्वामीनाथन चौथे चरण में प्रवेश करते हैं। इन चित्रों में दृश्य जगत आज तक वहीं हैं जगदीश स्वामी नाथन प्रकृति से बिम्ब चुनते हैं। मगर रूपक के रूप में प्रयुक्त करके उन्हे अपदार्थ बना देते हैं। जो अतिप्रसिद्ध हैं। ये टेढ़े मेढ़े पर्वत हैं, जो कोमल पारदर्शी और उत्तुंग हैं और आरोह तथा शाश्वतता के प्रतीक हैं। जगदीश स्वामीनाथन के चित्रों में पर्वत खण्ड हैं मुक्ताकाश में उड़ती चट्टानें हैं। जो पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण को चुनौती देती हुई सन्तुलन बनाये हुए हैं। कभी कभी ये चट्टाने पक्षियों का घोसला या उसका उडता वाहन बन गयी हैं। हमेशा उनके यहाँ एक अति संवेदनशील पक्षी या उनका जोड़ा होता है। प्रायः जगदीश स्वामीनाथन के चित्रों में पहाड़ की तलहटी में एक पेड़ या पुष्पित झाड़ी होती हैं। उसकी जड़ें मुश्किल से पृथ्वी के भीतर फैली हैं और शाखाएं आकाश में विस्तार पा रही हैं।

जगदीश स्वामीनाथन के चित्रों को भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के रस सिद्धान्त के आधार पर समझा जा सकता है। रस सिद्धान्त शान्त रस को सर्वोच्च मानता है। शान्त रस को जो विश्वात्मा से पूर्ण एकात्म और सामंजस्य के अनुभव की कल्पनापूर्ण प्रस्तुति करता है, इस प्रकार न केवल कलानुभव का उद्देश्य परमानन्द की प्राप्ति है, वरन् अनुभव की अनेक विशिष्ट कोटियों में तथा अन्य रसों की तुलना में सबसे अद्भुद रस शान्त को ही माना गया हैं, जोकि जगदीश स्वामीनाथन के चित्रों में परिलक्षित होता है।

''कला, निश्चित ही कला के लिये है किन्तु यह मनुष्य को उस अंजान कि तरफ से आश्चर्यजनक वस्तु की तरह उपहार के रूप में सम्बोधित है।''-जगदीश स्वामीनाथन

उपसंहार

जगदीश स्वामीनाथन ने अपनी कला के आदिम चिन्हों, तान्त्रिक चिन्हों, भारतीय लघु चित्रण के साथ आदिवासी चित्रण को विश्व कला पटल पर लाने का अथक प्रयास किया तथा जगदीश स्वामीनाथन प्रयासों से ही, आदिवासी चित्रण को कला जगत में मान्यता प्राप्त हुई। आपके व्यक्तिगत बैचारिक गुणों और नवीन शैलियों, जिसमें स्पेस की ज्यामतीय, वर्ड एवं सिम्बल सीरीज, जर्नी सीरीज, वर्ड एवं माउटेन्थ सीरीज चित्रण के पीछे का दर्शन आज भी अचंभित करने वाला है।

जगदीश स्वामीनाथन के चित्र, जो हमें अतीन्द्रिय लोक स्वप्न लोक में ले जाने वाली शक्ति रखती है, उसके अन्दर का दर्शन तथा आदिवासी संस्कृत के चित्रों के साथ ही आप के द्वारा लिखी पुस्तकें कला साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। आपके चित्रों में प्रकृति का चित्रण एवं चिड़ियो जो गुरूत्वार्षण से मुक्त सी प्रतीत होती हैं, जो स्थिर के साथ उड़ती सी प्रतीत होती यह हमें एक जादुई दुनिया की सैर कराने वाली लगती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

पूर्वग्रह, मार्च/ अप्रैल 1979 अंक में एक रूपक के पंख; गीता कपूर
भारतीय चित्रकला- डा0 जी के अग्रवाल
जगदीश स्वामीनाथन कैटेलाग, वडेरा आर्ट गैलरी

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,54-56
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 अप्रैल 2015

डॉ. जगदीश गुप्त एक अद्भुद कलाकार : कवि एवं चित्रकार

चन्द्रशेखर*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *डॉ. जगदीश गुप्त एक अद्भुद कलाकार : कवि एवं चित्रकार* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *चन्द्रशेखर* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

''कला सत्य की उपासना है।'' कलाकार सत्य का उपासक होता है। उसे वही सुन्दर दिखता है जो पूर्ण रूप से शिवमय होता है अर्थात् किसी भी कलाकार की श्रेष्ठता, उसके अनुभूति की गहराई और उसकी अभिव्यक्ति की सफलता से आँकी जाता है। अतीन्द्रिय मनोभावों को अंकित करने की क्षमता केवल चेतन भाव प्रणण-सहृदयम कलाकार में ही हो सकती है। ऐसे ही एक कवि, चित्रकार हैं- *डॉ0 जगदीश गुप्त जी।*

संघर्ष को ही जीवन का प्रेरणास्रोत मानने वाले डॉ0 जगदीश गुप्त जी हिन्दी साहित्य के दैदीव्यमान सितारे हैं, जिन्होंने छायावाद; प्रगतिवाद और प्रयोगवाद जैसे वादों को चौखटे से चीत्कारी कविता को स्वतन्त्र विचरा के लिए उन्मुक्त आकाश उपलब्ध कराया। उसको वाद मुक्त बनाकर स्वतन्त्रता और अभिव्यक्ति प्रदान की, इसके साथ ही डॉ0 गुप्त जी बंगाल शैली के ख्याति प्राप्त चित्रकार भी हैं, चित्रकला के अतिरिक्त भारतीय पुरातत्व में भी उन्होंने अपनी विशेषज्ञता के दायरे से बाहर जाकर काम किया है। यद्यपि दार्शनिक के तौर पर उनकी ख्याति नहीं है मगर चिंतन और चेतना की गति प्रगति की जितनी धमक उनकी सोच से उनके लेखन तक में जान पड़ती है। वह अत्यन्त दुर्लभ है, डॉ0 जगदीश गुप्त जी उन कवि, चित्रकारों में से हैं, जिनके सम्बन्ध में यह कहना शायद कठिन होगा कि उनकी अभिव्यक्ति का अधिक सशक्त माध्यम कविता है या चित्र। उनके सम्पूर्ण जीवन यात्रा के विकास को यदि हम देखते तो ज्ञात होता है कि उनका कृतित्व परम्पराओं से जुड़कर समकालीन परिवेश में उनके सक्रिय रचनात्मक एवं शोधपरक विचारधारा वाले व्यक्तित्व की छवि हमारे अन्तः पटल में स्थापित कराती है।

कवि एवं चित्रकार डॉ0 जगदीश गुप्त जी का जन्म उत्तर-प्रदेश में हरदोई, जिले के आँझी-शाहाबाद कस्बे में 3 अगस्त 1924 ई0 को हुआ था। मगर कार्यालयी जन्मतिथि 5 जुलाई 1926 ई0 होने के कारण उनके परिचित भी उनकी वास्तविक जन्मतिथि से अनभिज्ञ हैं उनकी माता का नाम श्रीमती रमादेवी तथा पिता का नाम शिव प्रसाद गुप्त था। अपने पिता की सात

* शोध छात्र, ललित काला विभाग, म. गा. चि. ग्रा. वि. वि. [चित्रकूट] सतना (मध्य प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल) E-mail : sekharart97@gmail.com

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

संतानों में एक मात्र जगदीश ही जीवित रहे। दस वर्ष की अल्पायु में पिता के निधन हो जाने के दो वर्षों बाद बारहा वर्षीय जगदीश अपने माता के यहाँ रहने लगे।

वास्तव में डॉ0 जगदीश गुप्त को चित्रकला तथा कविता की प्रेरणा अपने माता श्री रामस्वरूप गुप्त 'ललाम' से प्राप्त हुई। उनके मामा प्रसिद्ध चित्रकार थे। प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण कर आगे की शिक्षा हेतु अपने मामा के यहाँ देहरादून आ गये। उसके पश्चात् सीतापुर से मिडिल की परीक्षा पास करने के बाद मुरादाबाद से हाईस्कूल की परीक्षा 1941 ई0 में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। 1943 ई0 में डॉ0 गुप्त जी ने कानपुर से इण्टरमीडिएट की परीक्षा पास की, जिसमें पूरे उत्तर-प्रदेश में उन्होंने तृतीय स्थान प्राप्त किया। जगदीश जी जब इण्टरमीडिएट में पढ़ रहे थे तब भी वह किसी भी व्यक्ति का हूबहू रेखांकन कर लेते थे तथा उनकी कविताएँ भी इसी समय से प्रकाशित होनी शुरू हो गयी थी। जगदीश गुप्त प्रारम्भ से ही योग्य तथा प्रतिभावान छात्र थे।

डॉ0 जगदीश गुप्त उच्च शिक्षा ग्रहण करने हेतु इलाहाबाद आए एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय में स्नातक परीक्षा 1945 ई0 में उच्च द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। स्नातकोत्तर परीक्षा 1947 ई में हिन्दी विषय में प्रथम स्थान एवं स्वर्ण पदक प्राप्त किया। डॉ0 जगदीश गुप्त 1945 ई0 में चित्रकला में एवं 1951 ई0 में संस्कृत में डिप्लोमा किया। डॉ0 जगदीश गुप्त ने ''गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण काव्य का तुलनात्मक अध्ययन'' विषय पर डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में शोधकार्या (डी. फिल.) किया। भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन की दिशा में यह प्रथम शोधकार्य था। डॉ0 गुप्त जी की प्रथम नियुक्ति प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के लेक्चरर के रूप में 22 नवम्बर 1950 ई0 को हुई।

प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक के रूप में सेवारत डॉ0 जगदीश गुप्त ने हिन्दी साहित्य को ऊँचाइयाँ प्रदान करते हुए विभाग के गौरव को समुन्नत किया। क्योंकि चित्रण और कविता की प्रेरणा इन्हें बचपन से ही उपलब्ध थी। अतः इस दिशा में इनका वैशिष्ट्य कालचक्र की गति के अनुरूप प्रौढ़ होता चला गया। आचार्य क्षितीन्द्र नाथ मजूमदार जैसे ख्याति प्राप्त चित्रकार से चित्रकला वर्ग शिक्षा ग्रहण करने के बाद इनके भीतर का चित्रकार जाग्रह हो गया और फिर वह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक अपनी दिशा में परिभ्रमण करता रहा।

डॉ0 जगदीश गुप्त जी अल्पकाल में ही उनके शैक्षिक उपलब्धियाँ अर्जित कर ली थी। 24 वर्ष की अवस्था मे डॉ0 गुप्त जी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में विभागाध्यक्ष का पदभार ग्रहण किया। 1986-87 ई0 में विभागाध्यक्ष पद से अवकाश प्राप्त करने के उपरान्त डॉ0 जगदीश गुप्त जी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की उच्च शेध का विशेष योजना के अंतर्गत कार्यरत रहे।

डॉ0 जगदीश गुप्त जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। विभिन्न समितियों संगठनों, प्रतिष्ठानों द्वारा अनेकानेक पद प्रदान कर उन्हें सम्मानित किया गया। उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग तथा बिहार लोक सेवा आयोग में गुप्त जी ने विशेषज्ञ के रूप में कार्य किया तथा इण्डियन आर्कियोजोजिकता सोसाइटी दिल्ली के भी सदस्य रहे। वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन की पाण्डुलिपि क्रय, समिति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के परामर्शदाता भी रहे।

कवि एवं चित्रकार डॉ0 जगदीश गुप्त कविता व चित्रकला में समान और सार्थक हस्तक्षेप के लिये जाने जाते हैं। मगर इसके साथ-साथ गुप्त जी ने मूर्ति तथा पुरातत्व के क्षेत्र में अपना विशेष योगदान दिया है। बहुत बिरले ही ऐसे लोग हैं जिन्हों कविता या अन्य किसी विधा में लेखन के अलावा चित्रकला या फिर पुरातत्व में भी काम किया हो।

डॉ0 जगदीश गुप्त अन्वेषी कला के भी धनी थे। इसलिए उन्होंने प्रागैतिहासिक चित्रकला के स्वतः प्रेरित विशिष्ट अनुशीलन क्रम में भारत के विभिन्न भागों में स्थित बहुसंख्यक अज्ञात शिलाश्रयों एवं गुफाओं की प्राथमिक खोज भी की और वहीं बैठकर शिलाचित्रों का चित्रांकन व रेखांकन भी किया।

डॉ0 जगदीश गुप्त ने अपने जन्म स्थान शाहाबाद, हरदोई में व्यक्तिगत प्रयास से प्राप्त सहस्त्राधिक लघु मृण्मूर्तियों (टेरकोटा) का अप्रतिम संग्रह किया। उन्होंने पुरातत्विक महत्व की प्राचीन एवं मध्यकालीन मुद्राएँ, अभिमुद्राएँ पात्र एवं पात्र खण्ड जैसी महत्वपूर्ण सामग्री का संकलन किया। उनके स्वयं के तथा आत्मज अभिनव गुप्त द्वारा संग्रहित अनेक ताम्रास्त्र राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली की क्रम सीमित द्वारा ग्रहती एवं प्रदर्शित किये गये। उनके तलहार में टेराकोटा तथा प्रागैतिहासिक महत्व की महत्वपूर्ण सामाग्रियों का अथाह संग्रह संरक्षित है जिसमें 'सिंह के दाँत गिनते हुए भरत', 'भत्स्यवाहिनी गंगा' अनेकों ताम्रास्त्र

तथा सिक्के आदि प्रमुख हैं। ''उनके जीवन का दर्शन या-/ बन्धन है अगति/ उसी के जीवन बन्धता है,/ गति से क्या मुक्ति, बन्धु। गति ही तो मुक्ति है।''

डॉ0 जगदीश गुप्त जी द्वारा स्वरचित काव्य कृतियाँ (कविता संग्रह) निम्नलिखित हैं- *1. नाव के पांव (1955);* काव्यकृति में डॉ0 जगदीश गुप्त जी ने प्रत्येक कविता के नीचे रेखा चित्र बनाये हैं जो कि छोटे किन्तु सारगर्भित हैं। 2. शरद दंश (1959 ई0), *3. हिम-बिद्ध (1964 ई0);* हिमालय भ्रमण के दौरान गुप्त जी ने अपनी अनुभूतियों को कविताओं तथा रेखाचित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया, लेकिन फिर भी वे आत्म संतुष्ट न हुए तब उन्होंने दो बड़े तैलचित्रों का निर्माण किया है। *4. आदिक एकांत (1980 ई0);* इस कविता संग्रह में कुछ-कुछ कविताओं के बाद रेखांकन भी चित्रित है। 5. माँ के लिए (1987 ई0)।

यह डॉ0 जगदीश गुप्त माँ एवं शिशु का वात्सल्यपूर्ण चित्रण चित्र में भी दर्शनीय है जो कि डॉ जगदीश गुप्त जी ने चित्रित किया था।

डॉ0 जगदीश गुप्त के अति यथार्थवादी चित्रों पर चर्चा करते हुए प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में, ''चित्रकार के वे भाव जो उनकी कविताओं में एवं साहित्य की अन्य दिशाओं में अभिव्यक्ति नहीं पा सके, वे बरबस उनके चित्रों में प्रकट हुए है। यही कारण है कि उनके चित्रों के पीछे प्रायः कुछ अवर्णनीय भाव रहा है जिस प्रकार कवि गुरु रवीन्द्र नाथ ठाकुर जी ने अपनी जटिल एवं अमूर्त भावनाओं को अपेक्षाकृत अस्पष्ट चित्रों के माध्यम से व्यक्त किया था। कुछ-कुछ उसी प्रकार से जगदीश गुप्त ने भी अपने विचार समूह के उस भाव को जो सरलता से उनके साहित्य को अपना माध्यम नहीं स्वीकार कर सका है अपने स्पष्ट एवं साफ सुथरे चित्रों के साहारे प्रकट किया है। (ज्ञानोदय, मार्च 1956)

साहित्यकार लक्ष्मी कान्त वर्मा के अनुसार- डॉ0 जगदीश गुप्त का व्यक्तित्व स्वयं में एक संस्था या यदि साहित्य में वह कई कविता के विचारक के रूप में आधुनिक कहे जा सकते हैं तो उसी मात्रा में ब्रजभाषा और मध्ययुगीन साहित्य के मर्मज्ञ थे यदि उनके चित्रों को एक और आधुनिक चित्रकला का प्रतिनिधि माना जा सकता है तो उसी मात्रा में वह प्राचीन प्रागैतिहासिक कला के प्रति जिज्ञासू भी कहे जा सकते हैं। जहाँ वह 'शब्द चित्रों' के मर्मज्ञ हैं वहीं वह 'चित्रशब्द' या कहे कि रंग और रेखाओं के मर्म को भी जानते थे।

डॉ0 जगदीश गुप्त 26 मई, 2001 को प्रातः 4 बजे हार्टलीन अस्पताल, इलाहाबाद (सिविल लाइन्स) में लगातार जीवन-मृत्यु से संघर्ष करते-करते अचानक जीवन से मुक्त हो गये। उन्हीं के द्वारा रचित कविता जो उन्होंने 1950 ई0 में महाकवि निराला जी के प्रति लिखी थी। 'हो चुकी, अब हो चुकी सब यातनाएँ मुक्त। रम्य सुरसरि तीन तन-मन-मुक्त, जीवन मुक्त।'

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,57-60**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 16 अप्रैल 2015

महिलाओं के विशेषाधिकार

डॉ. विभा त्रिपाठी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *महिलाओं के विशेषाधिकार* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *विभा त्रिपाठी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

विशेषाधिकार से तात्पर्य ऐसे विशेष अधिकारों से है जो एक वर्ग विशेष को उसकी विशेष परिस्थितियों के कारण राज्य ने अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रदान किया है।

हमारा संविधान महिलाओं और बच्चों को उनके लिंग आयु एवं सामाजिक विकास के दृष्टिकोण से एक ऐसा वर्ग मानता है जिसके सर्वांगीण विकास के लिए कुछ विशिष्ट विधियों की आवश्यकता है। यही कारण है कि भारतीय संविधान के भाग तीन में मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को समता का अधिकार तो प्राप्त है परन्तु समता के इस अधिकार के साथ ही संविधान अनु0 15(3) के अन्तर्गत राज्यों की यह अधिकार भी देता है कि वह समय और परिस्थिति के अनुसार उनके विशेष संरक्षण एवं विकास के लिए विशिष्ट अधिकारों को प्रदान करने वाली विधियों की रचना कर सकता है। जब हम इन विशेषाधिकारों की चर्चा करते हैं तो हमारे मन-मस्तिष्क में औसत दर्जे की उस आम महिला की तस्वीर छिपी होती है जिसको दुनिया में आने का एक निश्चित और निश्चित अधिकार उपलब्ध कराने के लिए भी विधायिका को ही पहल करनी पड़ती है।

घर-परिवार और ईश्वरीय अनुकम्पा से यदि एक कन्या इस दुनिया में आती है तो फिर शुरू होती है उसके अस्तित्त्व के संघर्ष की एक अन्तहीन यात्रा। यदि वह महिला गरीब, अशिक्षित, दलित या अन्य पिछड़े वर्ग से आती है तो उसकी शोचनीय स्थिति और भी अधिक विचारणीय हो जाती है।

विधि और विधिक अधिकार तब तक निरर्थक और बेमानी माने जाते हैं जब तक इनकी समुचित जानकारी और सही उपयोग नहीं होता।

शिक्षा के मौलिक अधिकार को अमलीजामा पहनाने हेतु शिक्षा का अधिकार अधिनियम बनाया गया है और प्रत्येक माता-पिता का यह मौलिक कर्त्तव्य बताया गया है कि वह अपने बच्चों को शिक्षित करवायें। यह अधिकार एक सामान्य अधिकार है

* एसोसिएट प्रोफेसर, विधि संकाय, का. हि. वि. वि. वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

जो 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों चाहे वह लड़का हो या लड़की प्रदान किया गया है। लड़कियों की शिक्षा में मुख्य समस्या समाज की उस संकुचित सोच की है जिसमें उसे 'दुहिता' ओर 'पराया धन' माना जाता है।

परिवार और समाज से स्त्री को जिस सुरक्षा कवच की आवश्यकता होती है उसमें नित्यप्रति हो रहीं सेंधमारी निश्चित रूप से एक गम्भीर चुनौती है।

हाल ही में हुई दिल्ली की बलात्संग की घटना ने विद्यमान विधियों में आमूल-चूल परिवर्तन को बल दिया और परिणाम स्वरूप आज जो विधि हमारे पास है उसे दुष्कर्म विरोधी कानून या अपराधिक विधि संशोधन अधि0 2013 कहा गया है। जिसमें दुष्कर्म के दोषी को उस स्थिति में मृत्यु-दण्ड तक दिये जाने की व्यवस्था है जिसमें वह एक बार दोषी ठहराये जाने के बाद दोबारा यह कृत्य करता है।

यदि दुष्कर्म पीड़िता की मृत्यु हो जाये या वह कोमा में चली जाये तो दुष्कर्म के दोषी को कम से कम 20 वर्ष और अधिकतम उसके पूरे जीवन काल तक कारावासित किया जा सकेगा। इसके साथ ही कुछ नये अपराधों को भी शामिल किया गया है....मसलन बार-बार महिला का पीछा करने, अश्लील इशारा करने इत्यादि को गैर-जमानतीय अपराध की श्रेणी में रखा गया है। एसिड द्वारा हमले को एक अपराध बताया गया है और कम से कम दस वर्ष की सजा का भी प्रावधान रखा गया है। इस अधिनियम के द्वारा भारतीय साक्ष्य अधिनियम में इस प्रकार का संशोधन किया गया है जिससे पीड़िता अपना ब्यान विडियो कॉन्फ्रेन्सिंग के द्वारा भी दर्ज करा सकती है। लेकिन यहाँ विचारणीय प्रश्न यह नहीं है कि दण्ड कितना है वरन् विचारणीय यह है कि क्यों बढ़ रही हैं ऐसी घटनायें? क्यों दाण्डिक प्रावधानों का कोई भयकारी प्रभाव अपराधियों या संभावित अपराधियों को अपराध करने से रोक नहीं पा रहा है? दस वर्ष से 70 वर्ष तक की आयु का कोई भी व्यक्ति ऐसा अपराध कर दे रहा है.....क्या यह विकृत और कुत्सित पूँजीवाद का दुष्परिणाम है? क्या यह युवाओं में बढ़ती अपचारी अपसंस्कृति, महत्त्वाकांक्षा एवं निराशा की एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है? क्या ग्रामीण, अशिक्षित और बेरोजगार युवा ऐसे अपराधों में ज्यादा संलिप्त हैं? जब तक हम सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक दृष्टिकोण से इन प्रश्नों पर गम्भीरता से विमर्श नहीं करेंगे हमें विधि रूपी अलादीन का चिराग समस्याओं से मुक्त नहीं कर सकेगा।

...और यदि वास्तव में हम ऐसे लैंगिक अपराधों की पीड़िताओं की पीड़ा से क्षुब्ध हैं, व्यथित हैं, और उसके हित में काम करना चाहते हैं तो हमें अपराध पीड़िता की मदद करनी होगी, उसे सशक्त बनाना होगा, उसके दंश को कम करना होगा उसे समाज में पुनःस्थापित करना होगा और अन्ततोगत्वा उसे सामाजिक स्वीकृति देनी होगी। सांस्कृतिक क्षरण को रोकना होगा। अश्लील उपभोक्तावादी संस्कृति पर अंकुश लगाना होगा। पीड़िता को क्षतिपूर्ति के साथ-साथ नौकरी प्रदान कर उसे आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास करना होगा और इस प्रकार की विधियाँ यदि न हों तो शीघ्रतिशीघ्र बना के उसे पूर्ण उपचार प्रदान करना होगा।

यहाँ एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू पर ध्यान आकृष्ट कराना आवश्यक है कि ऐसे किसी भी अपराध के बारे में किसी स्त्री को कभी भी झूठा आरोप नहीं लगाना चाहिए। क्योंकि आपराधिक मामले में सजा तभी मिलती है जब दोष सिद्ध होता है। यदि मामले के विचारण में यह पाया जाता है कि मामला झूठा है तो इसका दुष्परिणाम कभी-कभी वास्तविक अपराध पीड़िता को झेलना पड़ता है अतः इन प्रावधानों का दुरूपयोग न हो इसका ध्यान रखना भी हमारी सामाजिक जिम्मदारी है। दहेज हत्या, क्रूरता, घरेलू हिंसा जैसे अन्य गम्भीर अपराधों में एक स्त्री को न्याय प्रदान करने हेतु विधायिका ने न सिर्फ कठोर विधियाँ बनायी है बल्कि उनका प्रवर्तन भी कठोरता से कराना सुनिश्चित कराया है। महिलाओं को प्रदत्त विधिक विशेषधिकारों के अगले पड़ाव पर चर्चा की जा सकती है भरण-पोषण सम्बन्धी प्रावधान की।

भरण-पोषण के अधिकार की माँग एक विवाहिता स्त्री तब करती है जब उसके विवाह सम्बन्ध या तो तल्ख हो जाते हैं या फिर उसका विधितः निर्दिष्ट परिस्थितियों के अन्तर्गत पूर्णतः विच्छेद हो जाता है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 की उपधारा (1) यह बताती है कि भरण-पोषण कर पाने में अक्षम पत्नि, सभी आवश्यक संताने जो चाहे धर्मज हो या अधर्मज, विवाहित हो या अविवाहित भरण-पोषण प्राप्त करने में सक्षम हैं। अवयस्क विवाहिता पुत्री तभी भरण-पोषण की माँग कर सकेगी जब वह अपने पति से भरण-पोषण प्राप्त करने में असमर्थ है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि ऐसी पत्नी जो आत्म निर्भर है एवं आय का अच्छा स्रोत उसकी आजीविका चलाने के लिए पर्याप्त

है तब वह भरण-पोषण प्राप्त करने की अधिकारी नहीं होगी वरन् यह भी हो सकता है कि स्वयं पति अपना खर्चा उठा पाने में सक्षम न हो और भरण-पोषण पत्नी को करना पड़े। माता-पिता अपने बेटे और ऐसी बेटी से भरण-पोषण की माँग कर सकते हैं जो सक्षम है।

वर्तमान में भरण-पोषण की अधिकतम राशि की सीमा को खत्म कर दिया गया है तथा इसका निर्धारण भरण-पोषण की माँग करने वाले के जीवन स्तर के आधार पर किया जाता है। भरण-पोषण सम्बन्धी यह प्रावधान एक धर्म-निरपेक्ष विधायन के प्रावधान हैं जो वैयक्तिक विधि में प्रदत्त प्रावधानों के अधीन हैं। किन्तु एक मुस्लिम महिला धारा 125 के अन्तर्गत भरण-पोषण की माँग अपने पति की पूर्वानुमति से ही कर सकेगी।

जहाँ तक पैतृक सम्पत्ति में महिलाओं के अधिकार की बात है यह उल्लेखनीय है कि यह मामला भी वैयक्तिक विधि यानि Personal Law से जुड़ा मुद्दा है।

हिन्दू उत्तराधिकार संशोधन अधिनियम, 2005 के द्वारा हिन्दू महिला के साम्पत्तिक अधिकारों में बहुप्रतीक्षित बदलावों को लागू किया गया है। इस संशोधन अधिनियम के द्वारा धारा 4(2), धारा 6, धारा 23, 24 एवं 30 में संशोधन किये गये हैं।

धारा 4(2) में संशोधन के परिणामस्वरूप अब महिलाओं को कृषियोग्य भूमि पर भी अधिकार प्रदान किया गया है; अर्थात् अब महिलायें राज्य विशेष की विधि या भूमि विधि के प्रावधानों की मोहताज नहीं रह गई हैं।

धारा 6 में संशोधन के परिणामस्वरूप अब मिताक्षरा सम्प्रदाय से शासित एक हिन्दू पुत्री, पुत्र के समान जन्म से ही सहदायिकी बन जायेगी और उसे वही अधिकार प्राप्त होंगे जो कि उसे होते जब वह एक पुत्र होती। परन्तु अब ध्यान देने योग्य बात यह है कि अधिकारों के साथ उसके दायित्व भी वही होंगे जो एक पुत्र के होते हैं।

निवास गृह के बारे में विशेष उपबन्ध करने वाली धारा 23 को संशोधन अधिनियम के द्वारा निरसित कर दिया गया है परिणामस्वरूप अब सभी पुत्रियाँ चाहे वह विवाहित हों या अविवाहित पुत्रों के समान ही मिताक्षरा सहदायिकी सम्पत्ति, पैतृक निवास में बँटवारा तथा निवास के अधिकार की माँग कर सकती है। संशोधन से पूर्व विवाहिता पुत्रियाँ पैतृक निवास सम्पत्ति में न तो निवास के अधिकार की माँग कर सकती थीं और न ही बँटवारेकी। धारा 30 में संशोधन के परिणामस्वरूप अब एक स्त्री अपनी सम्पदा को इच्छापत्र द्वारा व्ययनित भी कर सकती है।

आज की तेज भाग दौड़ की जिन्दगी में कामकाजी महिलाओं के विशेषाधिकारों की चर्चा करना नितान्त प्रासंगिक हो गया है।

भारतीय संविधान के अनु0 16(1) में यह प्रावधानित है कि राज्य नियोजन के मामले में लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार का कोई विभेद नहीं करेगा। एयर इण्डिया बनाम नरगिस मिर्जा के वाद में एक एयर होस्टेस के सन्दर्भ में सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णीत किया कि यदि एयर होस्टेस की नियुक्ति में ऐसी कोई शर्त होती है कि वह गर्भाधरण नहीं कर सकती तो इसे अर्थहीन और अयुक्तियुक्त माना जायेगा। किसी महिला की प्रोन्नति के मामले में इस बात पर इनकार नहीं किया जा सकता कि वह एक महिला है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रत्येक महिला जो किसी कारखाने, खान या उद्यम में कार्य कर रही है, चाहे वह दैनिक वेतन भोगी क्यों न हो यदि उसने 80 दिनों तक अपने नियोक्ता के यहाँ काम किया है तो वह मातृत्व लाभ जिसमें छः माह का सवैतनिक अवकाश शामिल होता है अधिकारिणी होगी। ऐसी महिला गर्भपात की दशा में भी छः हफ्तों तक सवैतनिक अवकाश की अधिकारिणी होगी।

कार्यस्थल पर कार्य करने वाली महिलाओं की एक अन्य प्रमुख समस्या उनके यौन शोषण की है जिससे संरक्षण प्रदान करने के लिए हाल ही में भारत सरकार ने यौन उत्पीड़न से कामकाजी महिलाओं के संरक्षण के लिए अधिनियम बनाया है। अब प्रत्येक संगठन के लिए एक ऐसा प्रकोष्ठ गठित किया जाना अनिवार्य है जिसमें एक महिला ऐसे किसी मामले की शिकायत दर्ज करा सकती है।

इन सब विधिक प्रावधानों के होते हुये भी एक महिला इनका लाभ कहाँ तक प्राप्त कर पायेगी इसका उत्तर समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक ढाँचागत स्वरूप पर भी निर्भर करेगा। महिलाओं पर हुए चार अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों से जो बात सामने

आयी वह यह कि हम महिलाओं के अधिकार को एक मानव अधिकार मानें और महिला को एक वस्तु नहीं वरन् इन्सान समझें क्योंकि अनेकानेक समस्यायें महिलाओं के वस्तुकरण से ही जुड़ी हुई हैं।

अन्त में, यह उल्लेखनीय है कि अधिकार और कर्त्तव्य के बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। अगर हम अपना कर्त्तव्य करेंगे तो अधिकार भी हमें मिलेंगे। यहाँ कर्त्तव्य से मेरा अभिप्राय है अपने अधिकारों को जानना उनके प्रति सजग रहना और उल्लंघन की दशा में प्रतिक्रिया व्यक्त करना। यानि अपने अधिकारों के प्रति अपना कर्त्तव्य और साथ में एक सकारात्मक सोच कि हम सब को एक स्वस्थ समाज बनाना है और यह तभी सम्भव होगा जब हम सब स्त्री-पुरूष मिलकर एक दूसरे के सहचर बनेंगे।

स्रोत

भारतीय संविधान, अनु0 15(3)
भारतीय संविधान, अनु0 16(1)
अपराधिक विधि संशोधन, अधि0 2013
दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125
हिन्दू उत्तराधिकार, संशोधन अधिनियम, 2005

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,61-65
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 23 अप्रैल 2015

विश्वशांति पर गाँधी एवं विनोबा के विचार

डॉ. ज्योति गुप्ता*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *विश्वशांति पर गाँधी एवं विनोबा के विचार* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *ज्योति गुप्ता* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

मानवजाति आज जिस सबसे बड़ी समस्या का सामना कर रही है वह विश्वशांति की स्थापना की समस्या है। आज विश्व कई तरह की जटिलताओं का सामना कर रहा है। आधुनिक सैन्य हथियार इतने अविवेकी और आपत्तिजनक हो गए है कि मानवजाति का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है और लोगों की नैतिकता में गिरावट आई है। 20वीं सदी की वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति ने युद्ध की प्रकृति को बदल कर रख दिया है। आज विज्ञान और हिंसा एक साथ जुड़ गए है जिससे मानवता खतरे में पड़ गयी है तथा कोई भी युद्ध वैश्विक युद्ध का स्वरूप ले सकता है। युद्ध रोकने व विश्वशांति की स्थापना में राष्ट्र संघ और संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना एक महत्वपूर्ण कदम थे लेकिन युद्धों को समाप्त करने व विश्वशांति की स्थापना में ये संस्थाएँ ठोस परिणाम नहीं दे रही है। इसलिए विश्व के राष्ट्रों के बीच स्थायी शांति की स्थापना अभी भी ज्वलन्त मुद्दा है। इन समस्याओं से निपटने का एकमात्र साधन गाँधी व विनोबा के विचारों की ओर लौटना है। इसमे कोई शक नहीं कि विश्व को आज इनकी जरूरत पहले से कहीं ज्यादा है। इन्होंने अपने जीवन को सिर्फ भारतीयों के निमित्त ही समर्पित नहीं किया अपितु एक वृहद निमित्त मानवता के लिए समर्पित किया और अपना सारा जीवन विश्वशांति की स्थापना में लगा दिया।

गाँधी भाइचारे के आधार पर विश्वशांति की बात करते थे तथा अहिंसा के अवतार के रूप में युद्ध को कभी सहमति नहीं दी। गाँधी मानते थे कि शांति की समस्या केवल सैन्य सम्पन्न राष्ट्रों के बीच सम्बन्धों की एक राजनीतिक समस्या नहीं है अपितु यह मानवजाति की समस्या है इसलिए उन्होंने मनुष्य एवं मनुष्य, समूह एवं समूह तथा राष्ट्र एवं राष्ट्र के बीच शांति स्थापित करने की कोशिश की।

गाँधी खुद दो क्रूर विश्व युद्धों के गवाह थे इसलिए उन्होंने स्वीकार किया कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की सबसे अनसुलझी समस्या युद्ध है और जब तक यह समस्या नहीं सुलझेगी, विश्वशांति का आदर्श प्राप्त नहीं किया जा सकता। गाँधी के अनुसार मानवजाति और इसकी सभ्यता अहिंसा के द्वारा ही विनाश से बचाई जा सकती है। गाँधी का मानना है कि अणुबम ने उस

* पूर्व-शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, का. हि. वि. वि. वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

उत्कृष्टतम भावना को निर्जीव कर दिया है जिसने मानवजाति को युगों से जीवित रखा है। गाँधी का मानना है कि अणुबम ने सभी प्रकार की हिंसा की व्यर्थता को सिद्ध कर दिया है। गाँधी का कहना है कि, ''अणुबम की भीषण त्रासदी से हम यह सीख ले सकते हैं कि इसका खात्मा किसी जवाबी बम से नहीं होगा, वैसे ही जैसे हिंसा का खात्मा प्रतिहिंसा से नहीं होता। मानवजाति केवल अहिंसा के जरिए ही हिंसा पर विजय पा सकती है। घृणा को प्रेम से ही जीता जा सकता है।''[1]

इस प्रकार गाँधी इस बात को पूर्णतः नकार देते है कि हिंसा का उत्तर प्रतिहिंसा हो सकता है। गाँधी ने युद्ध रोकने के लिए अहिंसक तरीके पर बल दिया एवं अहिंसक की महत्ता पर बल देते हुए कहा कि जब दो राष्ट्रों के बीच लड़ाई हो रही हो तो अहिंसक के पुजारी का कर्तव्य है कि युद्ध को रूकवाए।[2] गाँधी का मानना है कि जब तक बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रों का शोषण करते रहेंगे और उन्हे स्वतंत्रता तथा बराबरी का अधिकार नहीं देंगे तब तक शांति एक कल्पना ही रहेगी। गाँधी का कहना है कि, ''मुझे इसमे कोई संदेह नही है कि जब तक बड़े राष्ट्र शोषण की कामना और हिंसा की भावना का त्याग नहीं करेंगे जिसकी सहज अभिव्यक्ति युद्ध और अणुबम के रूप में होती है तब तक विश्व में शांति की आशा करना व्यर्थ है।''[3]

गाँधी दुनिया में रहने का एकमात्र सभ्य तरीका यह मानते थे कि हिंसा का जवाब हिंसा से न दिया जाए, बल्कि आक्रामक द्वारा ताकत के बल पर की गई माँग को मानने से इंकार कर दिया जाए। गाँधी मानते थे कि इसके अलावा कोई और तरीका हथियारों की होड़ को जन्म देगा। गाँधी समस्याओं की जड़ में जाते थे और उसे सुलझाने का प्रयास करते थे। गाँधी के अनुसार जब तक युद्ध के कारणों को नहीं समझा जायेगा और उसको जड़ से नष्ट नहीं किया जायेगा तब तक युद्ध को रोकने के सारे प्रयत्न व्यर्थ होंगे।[4] यूनेस्को का मानना है कि युद्ध मानव के मस्तिष्क में उत्पन्न होता है। यह विचारधारा गाँधी के विचारों से ही प्रेरित है अर्थात् यदि युद्ध को होने से रोकना है तो सर्वप्रथम मानव के मस्तिष्क एवं हृदय में परिवर्तन करना होगा।

गाँधी ने अहिंसा की ओर एक कदम बढ़ाते हुए निःशस्त्रीकरण की सार्थकता व्यक्त की। उनका मानना था कि यदि किसी राष्ट्र ने निःशस्त्रीकरण का कदम उठाया तो उस राष्ट्र में अहिंसा का स्तर इतना उठ चुका होगा कि दुनिया उसे आदर की दृष्टि से देखेगी। इसके आगे बड़ी शक्तियों के निःशस्त्रीकरण पर बल देते हुए गाँधी ने कहा कि, ''यदि वे या उनमें से कोई भी शक्ति विनाश के भय को अपने मन से निकालकर अपने को निरस्त्र कर सके तो इससे शेष राष्ट्रों को अपना मानसिक सन्तुलन फिर से कायम करने में अपने आप सहायता मिल जायेगी। लेकिन तब इन बड़ी शक्तियों को अपनी साम्राज्यवादी भावनाओं का त्याग करना होगा।''[5] इस प्रकार गाँधी विश्वशांति के लिए निःशस्त्रीकरण को अपरिहार्य मानते थे और उनका मानना था कि इससे राष्ट्र के निर्णय त्रुटिहीन होंगे, वह दृढ़निश्चयी होगा तथा उसमे आत्मत्याग की भारी क्षमता पैदा होगी।

विश्वशांति के मार्ग में एक और दुविधा के रूप में गाँधी आधुनिक विकास के मॉडल को मानते है जो कि औद्योगीकरण तथा भौतिकवाद के मूल्य पर खड़ा है। गाँधी बड़ी मात्रा में मशीनों के उपयोग के विरोधी थे। गाँधी हर तरह के मशीन के विरोधी नही थे अपितु विनाशकारी मशीनों के उपयोग के विरोधी थे जो कुछ लोगों को धनी बनाता हो। गाँधी के अनुसार, ''मुझे आपत्ति स्वयं मशीनों पर नहीं, बल्कि उसके लिए पागल बनने पर है। यह पागलपन श्रम बचाने वाले यंत्रों के लिए है। लोग श्रम बचाने में लगे रहते है, यहाँ तक कि हजारों लोगो को बेकार करके भूख से मरने के लिए छोड़ दिया जाता है। मैं भी समय और श्रम बचाना चाहता हूँ मगर मानव सभ्यता के अंश के लिए नहीं, बल्कि सबके लिए।''[6] इस प्रकार गाँधी को भय था कि यह मशीनीकरण और उद्योगवाद मानवजाति के लिए अभिशाप बन जाने वाला है। इस मशीनीकरण से संसाधनों का संग्रह मुठ्ठीभर लोगों में हो जायेगा और वे गरीबों का शोषण करेंगे जो कि विश्वशांति के लिए खतरा होगा।

गाँधी विश्वशांति की समस्या के रूप में एक और कारण देखते है, वह है पारिस्थितिकी अपकर्ष की। इस पारिस्थितिकी अपकर्ष के लिए गाँधी विकास का शोषणकारी प्रारूप, तकनीकी का वृहद् स्तर पर विकास, परमाणु युद्ध और मनुष्य का प्रकृति के प्रति शोषणकारी व्यवहार है। गाँधी ने इसे सांस्कृतिक और नैतिक क्षरण की संज्ञा दी। हमारा जीवन स्तर उच्च स्तर के उपभोग पर आधारित है और उच्च उपभोग स्तर अंततः उच्च पर्यावरण क्षरण की ओर ले जाता है। गाँधी ने सत्य ही कहा है कि 'हमें अपनी भौतिक इच्छाओं पर रोक लगाना चाहिए। दिमाग एक अस्थिर पक्षी के समान है, यह जितना पाता है उससे ज्यादा पाने की इच्छा रखता है फिर भी असंतुष्ट रहता है।'[7] इस तरह हम पर्यावरणीय समस्याओं की अनदेखी नहीं कर सकते है। हमे नये विश्वव्यवस्था की आवश्यकता है जो कि गाँधी के दर्शन और तकनीक पर आधारित हो और जो पर्यावरण व भूमि की रक्षा करता है।

गाँधी की विश्वशांति की अवधारणा काल्पनिक प्रतीत नहीं होती है। गाँधी समस्याओं की जड़ में जाते थे और इसके सभी पक्षों को देखते थे। इसलिए गाँधी ने युद्ध, असंतुलित आर्थिक विकास और पर्यावरण क्षरण को अन्तर्निर्भर बताते हुए इसे विश्वशांति के लिए खतरा माना और इसका समुचित हल प्रस्तुत किया। गाँधी ने आधुनिक सभ्यता के विनाशकारी स्वरूप के खिलाफ पहले ही सचेत कर दिया था।

महात्मा गाँधी की तरह आचार्य विनोबा भी मानवता के कल्याणार्थ विश्वशांति में विश्वास करते है। उनका विचार है कि शांति के वातावरण में ही सम्पूर्ण मानवजाति का सर्वांगीण विकास सम्भव है। वे यह मानते है कि विश्व समाज में पूर्ण रूप से शांति स्थापित किए बगैर 'विश्वबन्धुत्व' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसी भावना का विकास नहीं किया जा सकता। इसके लिए उन्होंने समस्त प्रकार के शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार, अन्याय और युद्ध की समाप्ति को आवश्यक माना। उनका विचार है कि सर्वांगीण समता के वातावरण में ही मानव एकता की भावना विकसित हो सकती है।

आचार्य विनोबा का चिन्तन विश्वशांति एवं विश्वकल्याण की भावना से ओतप्रोत है। अपने चिन्तन में उन्होंने मंगलमय विश्व की परिकल्पना की है। उनका उद्देश्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना है जिसकी आधारशीला करूणा, प्रेम, त्याग, सहयोग एवं शांति हो। ऐसा शांतिपूर्ण समाज मानव के चरित्रबल तथा लोकनीति से संचालित होगा तथा विश्वशांति का पथ प्रशस्त करेगा। विनोबा का मानना है कि यदि आप शांति चाहते है तो 'युद्ध की तैयारी करो' वाली बात बहुत खतरनाक है, क्योंकि यदि एक बार हथियारों की होड़ प्रारम्भ हो जाय तो फिर उसे रोकना कठिन हो जाता है और इन सबका परिणाम महाविनाशी युद्ध से कुछ कम नहीं होता। हथियारों की होड़ भय एवं शंका का परिणाम है। एक दूसरे के प्रति शंका से भी शांति स्थापित नहीं हो सकती। संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्तर्राष्ट्रीय संस्था भी विश्व में पूर्ण-शांति स्थापित करने में सफल नहीं हो सकी है।[8]

विनोबा का मानना था कि भूदान एवं ग्रामदान आंदोलनों से शांति स्थापित करने में सहायता मिल सकती है। विनोबा के अनुसार, ''भू-दान एवं ग्रामदान अथवा सर्वोदय का सिद्धान्त युद्ध का विरोधी है। इसका उद्देश्य स्त्री-पुरूषों को प्रतिदिन के व्यवहार में एवं जीवन में सत्य, अहिंसा एवं सेवा की भावना को उतारना अथवा ग्रहण करना है तथा किसी भी प्रकार की हिंसा को अपने आचरण में नहीं आने देना है।''[9] विनोबा के भू-दान एवं ग्रामदान का उद्देश्य मनुष्य के मन से निजी सम्पत्ति के प्रति आकर्षण को समाप्त करना है। यदि एक बार सत्य, अहिंसा और सामुदायिक समाज की स्थापना के लिए मनोवैज्ञानिक परिवर्तन हो जाए तो विश्वशांति का स्वप्न, स्वप्न न होकर वास्तविकता में परिणत हो जायेगा।

विनोबा के अनुसार विश्वबन्धुत्व की भावना को जागृत करने के लिए यह आवश्यक है कि उप-निवेशों की जनता को पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता दे दी जाए। जब तक संसार के शक्तिशाली राष्ट्र उप-निवेशों और दलित राष्ट्रों को निजी सम्पत्ति समझते रहेंगे। जब तक साम्राज्यवाद का तथा साम्राज्यवाद से और साम्राज्यवाद का राष्ट्रवाद से संघर्ष जारी रहेगा और विश्वशांति मृग-मरीचिका सी नित्य प्रति दूर हटती जायेगी।[10] परन्तु विनोबा के अनुसार राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद तक ही हमारी कठिनाइयों का अंत नहीं हो जाता। विश्वशांति के मार्ग में दूसरी भी अड़चनें हैं। एक तरफ मानव परिवार पूर्व-पश्चिम, काले और गोरे के भेदभाव में पड़कर छिन्न-भिन्न पड़ा है तो दूसरी ओर भौतिकवाद, आर्थिक लोलुपता और शोषण का रूप धारण किए संसार को संतप्त कर रहा है। इस लूट-खसोट की दुनिया में शांति का विचार उत्पन्न ही नहीं हो सकता। विनोबा के शब्दों में, 'स्थायी शांति तो तभी संभव है जब पृथ्वी पर रहने वाले अधिकांश मनुष्य इस बात का प्रयत्न करें कि हमारे बीच अंशाति न फैलने पाए, किन्तु मानव आत्मा तो आज सुप्तावस्था में है। सतत् प्रयत्नशील केवल थोड़े से लोग है, जिनका स्वार्थ इस बात में है कि संसार में हर समय कहीं-न-कहीं युद्ध, कलह और उपद्रव होता रहे।'[11]

विश्वशांति की समस्या आज एक अत्यन्त गूढ़ और जटिल समस्या बन गयी है और वर्तमान वातावरण में इसके हल होने की कोई सम्भावना नही है। विनोबा ने स्पष्ट किया है कि 'विश्व योजनाओं और विधानों के बल पर इस समस्या का हल नहीं हो सकता क्योंकि विश्वशांति की समस्या तत्वतः नैतिक है। जब तक हम अपने प्रश्नों को नैतिक और मानवीय दृष्टिकोण से देखने के आदि नहीं हो जाते अर्थात् जब तक राष्ट्रों के बीच सद्भावना और संवेदना का प्रादुर्भाव नहीं होता, तब तक राष्ट्रों के बीच संघर्ष का अंत नहीं होगा।'[12]

वर्तमान समाज में अशांति के तारतम्य का एक मुख्य कारक यह है कि हमारी अधिकांश राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक योजनाएँ अन्यायपूर्ण है। ऐसे समाज में जहाँ एक ओर लोग भूखों मरते हो, दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय लूट की योजनाएँ

बनायी जाती हो, एक ओर गंदे मकानों में रोग और भूख से कराहते हो, दूसरी तरफ महलों में थोड़े से लोग ऐश्वर्य लूटते हो, शांति समाज में कैसे रह सकती है? विनोबा के शब्दों में, 'जब तक हमारे समाजिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण जारी है, तब तक समाज में स्थायी शांति नहीं हो सकती।'[13] अतएव इन अशांतियों को दूर करने का उपाय केवल यही है कि हम उन पद्धतियों का ही अंत कर दें जो इन्हें जन्म देती हैं। अशांतियों की जड़ हमारे सामाजिक और आर्थिक संगठन तथा हमारी विचारधारा में है। अतः जब तक हम अपने सामाजिक और आर्थिक संगठन में मूलभूत परिवर्तन न कर दें तथा अपनी विचार परम्परा न बदले दें, तब तक अशांति का तारतम्य नहीं टूटेगा।

यदि सचमुच हमें युद्ध, शोषण, अन्याय, अत्याचार आदि से बचना है तो सत्य और अहिंसा का रास्ता ग्रहण करना ही पड़ेगा तथा तद्नुरूप कदम उठाने ही होंगे। विनोबा के ही शब्दों में, 'अब यदि मानव समाज को इन घातक युद्धों से बचना है, यदि संसार में न्याय और सुव्यवस्था स्थापित होती है, तो किसी न किसी देश को कुर्बानी करनी ही होगी। हिंसक क्रांतियों और स्वार्थमय युद्धों के आधार पर नवयुग का निर्माण नहीं हो सकता। नवयुग का प्रादुर्भाव तो तभी हो सकेगा, जब संसार के नैतिक सुव्यवस्था में खोई हुई हमारी आस्था पुनः सजीव हो उठे। इस खोई हुई आस्था का गाँधी के बतलाये मार्ग से भिन्न कोई मार्ग नहीं है।'[14]

विनोबा कहते है, 'हमारे बीच विश्वशांति या कल्याण का अंकुर तभी जम सकता है, जब हममें विवेक, मनुष्य-प्रेम, न्याय, दया आदि भावनाओं का प्रादुर्भाव हो और उनके प्रति हमारे हृदय में आस्था उत्पन्न हो जाय। युद्ध और हिंसा के मार्ग को ग्रहण कर हम मानवीय प्रकृति में खोई हुई आस्था प्राप्त नहीं कर सकते। हिंसा तो हमें विपरीत दिशा की ओर ले जाती है। हिंसा नास्तिकता है। नास्तिकता और हिंसा दोनों साथ-साथ नहीं रह सकते। आज हम क्षोभ और अशांति से पीड़ित है, क्योकि हमने नास्तिकता और हिंसा को अपनाया है। लोक भावना, न्याय, दया, शान्ति आदि मानवीय सिद्धान्तों से हमारा विश्वास ही उठ गया है.....अतः मानवजाति का उद्धार केवल प्रेम, शांति और अहिंसा से ही हो सकता है, अन्यथा किसी प्रकार से भी संभव नहीं है।'[15]

इस प्रकार आहिंसा, प्रेम, करूणा, सत्य के दर्शन को जीवन में एक बार ग्रहण करने के बाद निश्चय ही सभी अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष स्वयं समाप्त हो जायेंगे और संसार में शांति और सौहार्द्र का साम्राज्य स्थापित हो जायेगा। इनके विचारों के द्वारा कई समस्याओं जैसे- निःशस्त्रीकरण, पर्यावरण, विश्व व्यापार, गरीबी, आर्थिक असमानता, आर्थिक तकनीकी की समस्या, नव उप-निवेशवाद इत्यादि का समाधान किया जा सकता है तथा किसी का शोषण किए बिना शांति और अहिंसा के माध्यम से सबका अभ्युत्थान किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

[1]आर.के. प्रभु एवं यु.के. राव (1994)- *महात्मा गाँधी के विचार,* नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, पृष्ठ संख्या 212

[2]वही, पृष्ठ संख्या 430

[3]*हरिजन,* 10-11-1946

[4]उपरोक्त, संख्या-1, पृष्ठ संख्या 431

[5]*हरिजन,* 12-11-1938

[6]गाँधी (1955)- *सर्वोदय,* नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, पृष्ठ संख्या 47

[7]KAMAL CHOUDHARY, *"Buddhism and Environmental Activism"* in IJPS, New Delhi, Vol XXXIX, No. 8, July-September 1999, p. 582

[8]जनार्दन पाण्डेय (1986)- *सर्वोदय का राजनीति दर्शनः आचार्य विनोबा व दादा धर्माधिकारी के विचारों के परिप्रेक्ष्य में,* जानकी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 264

[9]वही, पृष्ठ संख्या 264

[10]वही, पृष्ठ संख्या 266

[11]विनोबा भावे (1955)- *कार्यकर्ता वर्ग,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 10

[12]राममूर्ति (1946)- *महात्मा गाँधी और विश्वशांति,* साहित्य निकुंज प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 34
[13]विनोबा (2003)- *शांति सेना,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 56
[14]विनोबा भावे (1955)- *त्रिवेणी,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 27
[15]कृष्णदत्त भट्ट (1955)- *बाबा विनोबा कहते क्या है?,* सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 15

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,66-69**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 अप्रैल 2015

जलवायु : परिवर्तन का मंडराता संकट

प्रो. अंजली श्रीवास्तव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *जलवायु : परिवर्तन का मंडराता संकट* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंजली श्रीवास्तव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है। वैज्ञानिक लगातार चेतावनी दे रहे हैं कि विश्व तेजी से जलवायु बदलाव के उस कठिन दौर से गुजर रहा है, जिसमें प्राकृतिक आपदाओं के अधिक उग्र होने की आशंका है। वर्तमान में जलवायु का यह परिवर्तन सकारात्मक कम व नकारात्मक अधिक है। जिन क्षेत्रों में पहले अधिक वर्षा होती थी वहाँ सूखा पड़ने लगा है और कहीं इतनी अधिक वर्षा होती है कि जान-माल की भारी क्षति हो जाती है। जहाँ सरदी के मौसम में अत्याधिक ठंड पड़ती थी, वहाँ अब कम ठंड पड़ती है और गरमी का मौसम तो हर जगह भयावह होता जा रहा है। सिंधु घाटी सभ्यता मनुष्य समाज के लिए एक ऐसा ज्वलंत उदाहरण है, जो यह बताता है कि जो सभ्यताएं भविष्य के प्रति सतर्क व दूरदृष्टि नहीं रखतीं, उनका सर्वनाश सुनिश्चित होता है।

प्रकृति में एक गहरी साम्यावस्था एवं सुव्यवस्था है। इसके प्रत्येक घटक अपने आप में महत्वपूर्ण हैं और एक दूसरे से परोक्ष एवं अपरोक्ष रुप से जुड़े हुए भी हैं। पारिस्थितिक तंत्र में इसे भोजन, ऊर्जा आदि क्रम के रुप में निरुपित एवं प्रतिपादित किया जाता है। ग्लोबल वार्मिंग से पारिस्थितिक तंत्र की ये कड़ियां आपस में टूटने, बिखरने एवं दरकने लगती हैं और इसी का दुष्प्रभाव अनेक प्राकृतिक प्रकोपों, दुर्घटनाओं आदि के रुप में सामने आता है। ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव से ग्लेशियर के अस्तित्व पर खतरा मंडराने लगा है। ये ग्लेशियर जल आपूर्ति के सतत स्त्रोत होने के साथ-साथ जलवायु चक्र में भी अहम् भूमिका का निर्वाह करते हैं। इन्हे छूकर बहने वाली हवा पृथ्वी का तापमान नियंत्रित करने में सहायक होती है।

वर्तमान जीवन में होने वाले तकनीकि विकास ने भी मनुष्य जीवन के हर पहलू को इतना प्रभावित किया है कि प्रत्येक व्यक्ति की ऊर्जा आवश्यकताएं अप्रत्याशित रुप से बढ़ गयी हैं जिसके कारण एक अकेला मनुष्य ही पृथ्वी के पारिस्थितिकीय संतुलन को कई गुना हानि पहुँचाने में सक्षम हो गया है। इसके अतिरिक्त आधुनिक जीवन पद्धति व सामाजिक, राजनीतिक,

* सहायक प्राध्यापिका, अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय महाराजा महाविद्यालय [सागर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध] छतरपुर (मध्य प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

आर्थिक दबावपूर्ण स्थिति में मनुश्य एवं समाज अपने जीवन में अत्याधिक ऊर्जा का उपयोग करने लगे हैं, जिससे पारिस्थितिकीय असंतुलन में तेजी से वृद्धि हो रही है ।

विश्व के दो हजार वैज्ञानिकों व विशेषज्ञों के समूह द्वारा तीन भागों में संकलित आईपीसीसी की वृहद रिपोर्ट का यह निष्कर्ष है कि जलवायु परिवर्तन व पारिस्थितिकीय असंतुलन का मुख्य कारण मनुष्य की प्रवृति, जीवनशैली व आधुनिक जीवन संस्कृति ही है और इन सबका एक कारण तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या और उसका भरण-पोषण व रहन-सहन है। मनुष्य की 10,000 पीढ़ियों के बाद पृथ्वी की जो जनसंख्या पिछली सदी के मध्य तक दो बिलियन थी, अब वह सात बिलियन छू लेने की कगार पर है। विशेषज्ञों के अनुसार अगले 50 वर्षों में विश्व की जनसंख्या 9 बिलियन हो जायेगी और यह बढ़ोत्तरी मात्र एक शताब्दी में लगभग चार गुना हो जायेगी।

आईपीसीसी की 2007 की रिपोर्ट के सारांश में यह प्रतिपादित किया गया कि इस अभूतपूर्व जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण लगभग शत-प्रतिशत मानव जाति द्वारा अल्पकालीन हितों की पूर्ति को दी जा रही प्राथमिकता है जिसके फलस्वरुप इस परिवर्तन व असंतुलन का विपरीत प्रभाव कृषि, मानव स्वास्थय, वन-संपदा, जंगली जीवों व हरित क्षेत्र पर अत्यंत स्पष्ट व प्रत्यक्ष रुप से देखा जा सकता है।

आर्कटिक क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन पर 2004 में प्रकाशित एक अध्ययन रिपोर्ट में यह पाया गया कि आर्कटिक क्षेत्र में तापमान की वृद्धि दर, विश्व के अन्य भागों में हो रही तापमान वृद्धि की तुलना में दोगुनी है। ऐसा इसलिए हो रहा है क्योंकि इस क्षेत्र में बरफीली सतहें अधिक कारगर ढंग से सूर्य की ऊष्मा का परावर्तन करती रही हैं, परंतु अब हिमखंडों के तीव्रता से पिघलने के कारण अनाच्छादित भू-क्षेत्र व सागर तल द्वारा अपेक्षाकृत अधिक ऊष्मा ग्रहण की जा रही है, जिससे यह क्षेत्र तीव्र गति से गर्म होता जा रहा है। साथ ही महासागरों का जल स्तर बढ़ने से सागर तट पर बसने वाली जनसंख्या कई देशों में पलायन कर रही है। इसके उदाहरण तवालु द्वीप, बांग्लादेश आदि में स्पष्ट तौर से देखे जा सकते हैं।

'नेचर पत्रिका' में प्रकाशित एक नवीन अध्ययन रिपोर्ट में यह पाया गया कि वातावरण में बढ़ रही कार्बन डाइ-ऑक्साइड की मात्रा से समुद्र के जल का पी एच स्तर कम हुआ है, जिससे सागर का जल अम्लीय होने लगा है। यदि यह क्रम न रुका तो समुद्री जीव जन्तुओं के जीवन पर विनाशकारी प्रभाव पड़ेगा और इसका परिणाम यह होगा कि कोरल व अन्य फलैंक्टन पहले की तरह कैल्सियम कार्बोनेट की संरचना नही कर सकेंगे। इसी तरह का प्रभाव वर्तमान समय मे अरब की खाड़ी में स्थित लक्षद्वीप, मालदीव और आस्ट्रेलिया में स्पष्ट रुप से देखा जा रहा है।

इसी तरह 'साइंस पत्रिका' व 'जियोफिजिकल रिसर्च लेटर' में प्रकाशित अनेक अध्ययन रिपोर्टों से यह स्पष्ट हो गया है कि वर्तमान जलवायु परिवर्तन की स्थिति से महासागरों के जल का तापमान अप्रत्याशित रुप से बढ़ रहा है, जिससे समुद्री तूफान व हरिकेन को पैदा करने वाली ऊर्जा में तीव्र बढ़ोत्तरी हो रही है। 'जियोफिजिकल रिसर्च लेटर' में प्रकाशित एक अन्य अध्ययन में यह पाया गया है कि यूरोप के अल्पाइन ग्लेशियर इस सदी में लगभग समाप्ति की स्थिति में पहुँच सकते हैं। इसी प्रकार एशिया में हिमालयी ग्लेशियर पिघल रहे हैं। इससे नदियों के बहाव में भारी फेर बदल हो रहर है। नेपाल में पिछले 25 वर्षों में ग्लेशियर पिघलने से बनी झीलों के फूटने से बीस बार बाढ़ आ चुकी है। 30 अक्टूबर 2012 के दिन अमेरिका में लगभग 2000 किमी चौड़े, 130 किमी प्रति घंटे की रफतार वाली तेज हवाओं से युक्त और 12 इंच तक वर्षा के साथ आये सैंडी तूफान से न्यूयार्क सिटी, न्यूजर्सी, वाशिंगटन डी.सी. अटलांटा सिटी में जन-जीवन अस्त व्यस्त हो गया। मौसम विभाग के प्रमुख अधिकारी ने इसे अमेरिकी इतिहास का सबसे भयानक चक्रवाती तूफान बताया और इनका मानना है कि इसके कारण सघन आबादी वाले पूर्वी तटीय इलाके और बड़े शहरों में रहने वाली अमेरिका की लगभग 25 प्रतिशत आबादी प्रभावित हुई। इस तूफान के कारण अमेरिका में कई हवाई अड्डे बंद कर दिये गये और 7000 से अधिक उड़ाने रद्द कर दी गईं। सैंडी तूफान से मची तबाही से लोग उबर भी न पाये थे कि अमेरिका के न्यूयार्क और न्यूजर्सी में तेज हिमपात के साथ एक नये तूफान 'एथेना' ने दस्तक दी, जिसके कारण 1700 से अधिक उड़ानो को रद्द कर दिया गया और बिजली की आपूर्ति को बंद कर दिया गया। इस तूफान की वजह से न्यूयार्क, न्यूजर्सी और कनेक्टीकट में 13 इंच मोटी बरफ गिरी, जिसके कारण जन-जीवन बहुत प्रभावित हुआ।

इसके पहले 11 मार्च 2011 को पूर्वोत्तर जापान में 8.9 की तीव्रता वाला जबरदस्त भूकम्प आया। अमेरिकी भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार भूकम्प के इस पहले झटके के बाद यहां आठ और झटके महसूस किये गये जिनमें सबसे तेज झटके की तीव्रता रिक्टर पैमाने पर 7.1 मापी गयी। जापान के पिछले 150 वर्षों के रिकार्ड में अभी तक इतनी अधिक तीव्रता का भूकम्प कभी नहीं आया और भूकम्प आने के तुरंत बाद सुनामी की 13 मीटर से अधिक ऊंचाई की लहरों से भयंकर तबाही हुई एवं 40 लाख से अधिक घरों को नुकसान पहुँचा। यातायात, संचार व्यवस्था, बड़े हवाई अड्डे आदि कई दिनों के लिए बंद कर दिये गये।

वैज्ञानिकों के अनुसार बड़ी मात्रा में हिम प्रखंड दक्षिणी ध्रुव की ओर धीरे-धीरे सरक रहे हैं, जिसके फलस्वरुप पूरे विश्व का तापमान गिर रहा है और उत्तरी गोलार्द्ध में बरफ का जमाव अधिक हो रहा है। इस तरह दक्षिणी एवं उत्तरी ध्रुव प्रदेशों के तापक्रम में अप्रत्याशित रुप से हुआ हेर-फेर विश्व के मौसम को प्रभावित कर रहा है।

वॅर्ल्ड क्लाइमेट कॉन्फ्रेंस डिक्लेरेशन एंड सपोर्टिंग डाक्यूमेंट्स के अनुसार प्रौद्योगिकी के व्यापक विस्तार के कारण हवा में कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा तेजी से बढ़ रही है, जिसके कारण शीत ऋतु में पूर्व रिकार्डों को तोड़कर ठंड पड़ी है। मौसम वैज्ञानिकों के अनुसार प्रशांत महासागर में अल-नीनो एवं ला-नीना के असंतुलन के कारण ठंड अधिक पड़ती है। प्रशांत महा-सागर में सूर्य अगर किसी वजह से भू-मध्य रेखा के आस-पास के इलाके के पानी को गरम नहीं कर पाता है और पानी का तापमान औसत 27 डिगरी से नीचे रहता है, तो ऐसी स्थिति में अल-नीनो नहीं बन पाता और इससे जो स्थिति बन जाती है उसे ला-नीना कहते हैं। जब भी ला-नीना का असर दुनिया में आता है तो परिणाम स्वरुप उस वर्ष ठंड अधिक पड़ती है। प्रशांत महासागर में अल-नीनों का न बनना मौसम की बड़ी चेतावनी समझा जाता है। इसके न बनने पर सामने आने वाली ला-नीना की स्थिति मौसम में कई असामान्य हलचलों को जन्म देती है। इस स्थिति में मानसून असामान्य हो जाता है और पश्चिमी विक्षोभ की घटनाएं बढ़ जाती हैं।

मौसम विशेषज्ञों के अनुसार, इस बार पड़ने वाली कड़ाके की ठंड की वजह पश्चिमी विक्षोभ है। पश्चिमी विक्षोभ, पश्चिम के ठंडे बरफीले इलाकों से उठने वाली उन सरद हवाओं को कहते हैं, जो कैस्पियन सागर के उस पार से उठकर हमारे देश की ओर आती हैं। इंडियन नेशनल सेंटर फोर ओशियन इन्फॉर्मेशन सर्विसेज ने विश्लेषण के बाद दावा किया कि प्रतिवर्ष समुद्र के जल स्तर में औसतन 1.29 मिमी. की बढोत्तरी हुई है। यही स्थिति रही तो इक्कीसवीं सदी के अंत तक समुद्र का जल स्तर 46.59 तक बढ़ सकता है। इसके प्रभाव से समुद्र के पास के शहरों पर डूबने का खतरा बढ़ गया है। जलवायु चक्र का सीधा प्रभाव खाद्यान उत्पादन पर पड़ता है। ठंड के मौसम में होने वाली बारिश के कारण अधिकांश खेतों में पाला पड़ गया और फसलें खेतों में ही नष्ट हो गईं। जिन स्थानों में फसलें तैयार भी हुईं तो उनकी कटाई के समय बारिश होने से वे बरबाद हो गईं। अनुसंधानकर्ताओं ने अगाह किया है कि वायु में बढ़ती कार्बन डाई-ऑक्साइड तथा परमाणु विस्फोटों से होने वाले विकिरण के उच्च तापक्रम के रोकथाम की व्यवस्था अतिशीघ्र होनी चाहिये, अन्यथा विनाश तय है।

वैज्ञानिकों द्वारा जलवायु परिवर्तन के इस क्रम में मूंगाभित्तियों पर पड़ते प्रभाव विशेष रुप से अध्ययन किये जा रहे हैं। मूंगाभित्तियां प्रकृति द्वारा प्रदत्त कार्बन अवशोषित करने का सबसे अच्छा माध्यम है। पृथ्वी पर जीवन संचार सबसे पहले इन मूंगाभित्तियों में ही हुआ। अब यदि जीवन संचार के प्रथम माध्यम का ही अस्तित्व समाप्त होने लगे तो यह समझना चाहिये कि प्रकृति गंभीर परिवर्तनों के दौर से गुजर रही है। पहले के विवरण यह बताते हैं कि हम लाखों एकड़ मूंगाभित्तियां पहले ही गंवा चुके हैं और यदि समुद्र का तापमान केवल आधा सेल्सियस ही बढ़ा तो हम शेष मूंगाभित्तियों को भी शीघ्र गंवा देंगे।

यदि इस सदी में 1.4 से 5.8 डिगरी सेल्सियस तक वैश्विक तापमान में वृद्धि की रिपोर्ट सच साबित हुई और अगले एक दशक में 10 प्रतिशत अधिक वर्षा नहीं हुई तो समुद्रों का जल स्तर 90 सेंटीमीटर तक बढ़ जायेगा, परिणामस्वरुप समुद्र के तटवर्ती इलाके डूब जायेंगे और अन्य विनाशकारी परिणाम भी आयेंगे।

प्रकृति में प्रदूषण इस कदर फैलता जा रहा है कि प्राकृतिक जलवायु अपनी मर्यादाएं तोड़ती जा रही है। इसका एक प्रमाण यह है कि जहाँ पहले अमेरिका में एक वर्ष में 5 से 7 समुद्री चक्रवातों का औसत था, वहीं आज उनकी संख्या बढ़कर 25 से 30 हो गई है। न्यू आर्लिएन्स नामक शहर ऐसे ही चक्रवात के घेरे में अपना आधे से ज्यादा अस्तित्व गंवा चुका है। चक्रवात लू ने फ्रांस में हजारों को मौत की नींद सुला दिया। आबूधाबी जैसे गरम प्रदेश में भयंकर बारिश हुई और हिम प्रदेश ग्रीनलैंड

की बर्फ पिघलने लगी है। पहले दशक की तुलना में धरती से समुद्र का तल 6 से 8 इंच बढ़ गया है। इसके कारण दुनिया का सबसे बड़ा जीवंत ढांचा कहा जाने वाले ' ग्रेट बैरियर रीफ ' का अस्तित्व खतरे में है। करीब 13 वर्ष पहले प्रशांत महा-सागर के एक टापू किरीबाटी को हम समुद्र में खो चुके हैं। भारत के सुंदरवन स्थित लोहाचारा टापू भी आखिरकार डूब ही गया। हिमालयी ग्लेशियरों का 2077 वर्ग किमी का घेरा पिछले 50 वर्षों में सिकुड़कर लगभग 500 वर्ग किमी कम हो गया है और गोमुख स्थित ग्लेशियर का टुकड़ा भी अलग हो गया है। अमरनाथ के शिवलिंग के रुप-स्वरुप पर भी खतरा मंडराता रहता है। देश की कई नदियां नाले का रुप लेती जा रही हैं। भू-जल में आर्सेनिक आदि भारी घातुओं की मात्रा बढ़ती जा रही है। ये सब शुभ संकेत नही हैं।

वर्ष 1992 में यूनाइटेड नेशंस फ्रेमवर्क कन्वेन्शन ऑन क्लाइमेट चेंज बना था, तभी से जलवायु परिवर्तनो से निपटने के लिए उपायों पर चर्चा आरम्भ हुई, लेकिन अब तक इन खतरों से निपटने के लिए कोई ठोस रणनीति पर क्रियान्वयन शुरु नहीं हो पाया है। आज स्थिति इतनी भयावह व विषम हो चुकी है कि प्रदूषण की रोकथाम तथा जलवायु परिवर्तन के मुख्य कारणों के निवारण के लिए यदि समय पर सशक्त व समय बद्ध प्रयास विश्व के सभी राष्ट्रों द्वारा हर स्तर पर नहीं किये गये तो जल, भूमि, वायु व मनुष्य जाति का असंतुलन आगामी पीढ़ियों के विकास व स्वस्थ जीवन के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हो सकते हैं।

अतः प्रदूषण नियंत्रण के लिए योजनाओं की सही संरचना का निर्माण व उसका समय बद्ध क्रियान्वयन ही एकमात्र ऐसा विकल्प है जिससे जलवायु परिवर्तन की गति को नियंत्रित किया जा सके। इसके लिए पारिस्थितिकीय संतुलन की महत्ता की स्वीकार्यता, जल उपयोग, उर्जा उपयोग की बढ़ती प्रवृति पर रोक, प्लास्टिक आदि के उपयोग पर पूर्ण रोकथाम, वर्षा जल संचयन, पृथ्वी का कण-कण हरीतिमामय बनाने का संकल्प व तदनुरुप योजनाओं का क्रियान्वयन आज मनुष्य समाज के सुरक्षित भविष्य के लिए अत्यन्त अनिवार्य हो गया है।

संदर्भ सूची

अमेरिकी भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण की रिपोर्ट
नेचर पत्रिका-अध्ययन रिपोर्ट
साइंस पत्रिका
आई पी सी सी (इंटरगवर्नमेंटल पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज) की रिपोर्ट
इंडियन नेशनल सेंटर फॉर ओशियन इन्फार्मेशन सर्विसेज की रिपोर्ट
अखंड ज्योति, जनवरी 2013
अखंड ज्योति, जनवरी, जुलाई, सितम्बर 2014

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,70-73**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 03 जनवरी 2014

उपासना का विधान

डॉ. स्मिता द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *उपासना का विधान* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *स्मिता द्विवेदी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

स्तुत्य गुणों का बखान करके उससे उन गुणों की प्राप्ति के लिए सामर्थ्य की याचना करना प्रार्थना कहलाती है तथा उन स्तुत्य गुणों को अपने अंदर धारण करके उसके समीप जाना उपासना कहलाती हैं। जब तक उपास्य और उपासक में एकरूपता न होगी, उपासना-समीप बैठना, समीप जाना या बन्धुत्व प्राप्ति करना नितान्त असम्भव है क्योंकि समान गुण कर्म वालों में ही मैत्री होती है। भगवान् हों ज्ञान के पुन्ज, सत्यव्रत, सर्वदोष विवर्जित और हम हो अज्ञानान्धकार से आवृत, अनृतवादी, सर्वदोष युक्त तब कभी भी उपासना नहीं हो सकती इसलिए वेद में स्तुति के साथ प्रार्थना व उपासना दोनों में से एक अंग अवश्य सम्बद्ध रहता है। पुरुषार्थ 'अहं' को पोषित करता है और उपासना 'अहं' को खाकर प्रार्थी को लक्ष्य से अभिन्न करती है। उपासना प्रार्थी की सभी निर्बलताओं का अन्त कर निर्दोषता से अभिन्न करती है इतना ही नहीं उपासना से प्राप्त निर्दोषता साधक को गुणों के अभिमान से रहित कर देती है अतः दोषों का अन्त एकमात्र उपासन के माध्यम से ही सम्भव है।

श्रुति का वचन हैं कि ब्रह्म विश्व के सर्ग, स्थिति और प्रलय का कारण है। अतः जीव को उसकी उपासना करनी चाहिए- ''अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।''[1] आदि अन्यान्य शास्त्रीय वाक्यों में उपासना का विधान किया गया है। 'उप' उपसर्ग पूर्वक आस धातु से उपासना शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है 'निकट बैठना'। सेवा के लिए निकट बैठने के भाव को सूचित करने के लिए ही पहले पहल इस शब्द का प्रयोग हुआ होगा। किन्तु अब भक्ति अर्थात् सेवा के पर्याय रूप से इसका प्रयोग होता है। भक्ति का मुख्य अर्थ है सेवा- जैसा कि इसकी व्युत्पत्ति से स्वतः ही ज्ञात हो जाता हैं। सेवा के प्रेम मूलक होने की युक्ति देकर इसका अर्थ प्रेम भी किया गया है- 'सा परानुरक्तिरीश्वरे।'

तथापि सेवा ही इसका प्रधान अर्थ है, गीता के प्रस्तुत पद्य में भी यही अर्थ दृष्टिगोचर होता है- 'मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते'[2]

* पूर्व-अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, आर्य महिला डिग्री कॉलेज चेतगंज वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

उपासना और भजन एकार्थक है अतः शास्त्र में जिस प्रकार उपासना का विधान हैं उसी प्रकार भजन का भी।

उपासक अपनी समस्त भावनाओं को एक मात्र उपास्य में केन्द्रित कर देते हैं, परमात्मा को अपने सभी भावों का आश्रय और आधार बना लेते है; जगदीश्वर ही उनके माता, पिता, भ्राता, मित्र बन्धु-बान्धव, पुत्र हैं; विद्या धन आदि समस्त कामनायें भी वहीं है- ''पिता माता सुहृद्बन्धुर्भ्राता पुत्रस्त्वमेव में। विद्या धनं च कामश्च नान्यत्किंचिच्चया विना।।''[3]

सेवा में तीन भाव देखने को मिलते हैं- 1. बड़ों की सेवा 2. बराबर वाले की सेवा और 3. छोटे की सेवा। माता, पिता, गुरू, स्वामी, सम्राट की जो सेवा पुत्र, शिष्य, पत्नी और सेवक करते हैं, यह पहला भाव है। एक मित्र दूसरे मित्र की जो सेवा करता है वह दूसरा भाव है। माता-पिता जो पुत्र की सेवा करते है वह तीसरा भाव है। उपासक लोग ईश्वर की भक्ति इन तीनों भावों से करते हैं। पहले भाव को दास्य, दूसरे को सख्य और तीसरे को वात्सल्य कहते हैं। पत्नी द्वारा पति की सेवा के भाव को माधुर्य नाम दिया जाता हैं। इसे प्रथम भाव का ही विशेष परिष्कृत और चूडान्त रूप मानना चाहिए।

जीव अपने को पुत्र और ईश्वर को पिता मानकर उसकी अराधना करता है। लोक में जिस प्रकार पिता से पुत्र उत्पन्न होता है ठीक उसी प्रकार आराध्य से आराधक के उत्पन्न न होने पर भी आराध्य पिता है और आराधक पुत्र है। शब्दों का यह औपचारिक प्रयोग है।

भक्ति मार्ग में दो न्याय प्रसिद्ध हैं- एक तो मर्कट किशोर (बंदरी का बच्चा) न्याय और दूसरा मार्जार किशोर (बिल्ली का बच्चा) न्याय। पहले में उपासक उपास्य देव की उपासना में अपनी ओर से इस प्रकार प्रवृत्त होता है जिस प्रकार बंदरी का बच्चा अपनी ओर से अपनी माता को पकड़े रहने में प्रवृत्त होता है, और दूसरे में वह इस प्रकार की प्रवृत्ति से उदासीन रहता हुआ ही भगवान् को इस प्रकार बुलाता है जिस प्रकार बिल्ली का बच्चा अपनी माता को। बंदरी का बच्चा स्वयं माता को पकड़े रहता हैं जहॉ-जहॉ माता जाती है चला जाता है, परन्तु बिल्ली के बच्चे की मां उसे स्वयं मुंह में पकड़कर जहां चाहती है ले जाती है। पहला स्वेच्छा से माता पर निर्भर है तो दूसरा माता की स्वेच्छानुसार माता पर निर्भर है।

इसी प्रकार उपासक अपनी सभी भावनाओं को ईश्वर पर ही केन्द्रित कर लेते हैं। उन्हें ही अपना आधार बना लेते हैं।

मधुर भाव में जीव ईश्वर को अपना पति मानकर पूजन करता है- 'पत्यादिशब्देभ्यः।'[4]

तब भी 'पति' शब्द का प्रयोग औपचारिक ही होता है; क्योंकि जीवेश्वर में लौकिक पत्नी पति के समान शरीरसम्बन्ध की गन्ध का भी अवसर नहीं है। कोई परमात्मा को अपना मित्र कहता है किन्तु जितनी सहज सेवा ईश्वर को माता-पिता गुरू सम्राट और स्वामी मानकर की जा सकती है उतनी अन्य में नहीं। किन्तु दास्यभाव में तो सेवा ही सेवा दिखलाई देता है-

उपासक कहता है- 'जन्मप्रभृतिदासोऽस्मि शिष्योऽस्मि तनयोऽस्मि ते। त्वं च स्वामी गुरूर्माता पिता च मम माधव।।'[5] हे माधव! मैं तुम्हारा दास हूँ, शिष्य हूँ और पुत्र हूँ तथा तुम मेरे स्वामी गुरू और माता पिता हो। यह दास्य ही, सेवा भाव ही, भक्ति का ही स्वरूप हैं अग्नि पुराण के अनुसार- ''त्वमम्बा सर्वभूतानां देवदेवो हरिः पिता'।।[6]

सेवा के विविध भावों में यह कोई निश्चित नियम नहीं है कि पहले दास्य की साधना की जाए, फिर सख्य की, फिर वात्सल्य की और फिर माधुर्य की।

चारो वेदों के सार भूत गायत्री मंत्र के जप के समय उपासक सविता कहकर ही उनकी मंगल भावना करता है, यथा- ''पितासि लोकस्य चराचरस्य/ त्वमस्य पूज्यश्च गुरूर्गरीयान्/ न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो/ लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव।।''[7]

दास्य का कितना सुन्दर भाव यहां देखने को मिलता है। वैष्णवों में शिवजी को सर्वप्रमुख माना गया है वे परम भागवत हैं- ''वैष्णवानां यथा शम्भुः''[8]; भगवान् शिव ने धरती पर हनुमान जी के रूप में अवतीर्ण होकर अपने आचार के माध्यम से समस्त संसार को दास्य भाव की ही शिक्षा दी है। हनुमान जी स्वयं को राम का दास कहते हैं- 'दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य'[9]

उपासना दो प्रकार की होती है- परा और परमा, अन्य शब्द में हम इन्हें क्रमशः साधन भक्ति और साध्या भक्ति कहकर पुकारते हैं। ईश्वर वे चरण कमलों में सेवा भाव ही परा भक्ति कहलाती है। साधन द्वारा जब साधक सिद्धि प्राप्त कर लेता हैं तब उसे साक्षात् उन देवी देवताओं का सान्निध्य प्राप्त हो जाता है उस सेवा का नाम 'परमा' होता है।

उपासना की अनेक विधाएं है उपास्य की गुण कथाओं को श्रवण करना, उनके नामों का कीर्तन करना, उनकी महिमादि का स्मरण करना, चरण संवाहन करना, सात्विक सामग्री से अनेक श्री चरणों में सपर्या समर्पित करना, उनके प्रतीकों के समक्ष प्रणाम करना, दास्य, सख्य एवं आत्म-निवेदन करना- भजन के ये नौ प्रकार बताए गए हैं।

''श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्। अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।''[10]; ये नौ प्रकार भक्ति के नौ अंग कहलाते है। इनमें एक-एक अंग भी साधक का कल्याण कर सकता है, फिर एकाधिक अंगों को यदि साधक अपनाये तो कल्याणप्रद ही होगा।

वेद के तीन काण्ड माने जाते हैं- 1. कर्मकाण्ड 2. ज्ञानकाण्ड और 3. उपासना काण्ड। पहले दो काण्ड उपासना काण्ड की सहायता करते है। यद्यपि ज्ञान और उपासना दोनों से ही निःश्रेयस् की प्राप्ति होती है फिर भी उपासना का मार्ग साधन की दृष्टि से अत्यन्त मनोहर है।

ज्ञान मार्ग से भी ब्रह्म प्राप्ति के निर्देश प्राप्त होते हैं यथा- पंचाग्निवेदोऽप्यर्चिरादीना गतिश्रवणात्, अर्चिरादिनां गतस्य ब्रह्म-प्राप्त्यपुनरावृत्तिश्रवणाच्च। अतएव तत्क्रतुन्यायात् प्रकृतिविनिर्मुक्तब्रह्मात्मकात्मानुसन्धानं सिद्धम्।[11]

गीता के अनुसार आत्मानुसन्धान अत्यन्त दुःखद है। जैसा कि श्रीभगवान् की सूक्ति है- 'क्लेषोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्त-चेतसाम्। अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।।''[12] अतः भक्तजन ज्ञानमार्ग की अपेक्षा उपासना को बहुमान देते हैं।

मंत्र ब्रह्मणात्मक श्रुति के अतिरिक्त जो शास्त्र हैं वह स्मृति कहलाता है। इतिहास, पुराण, आगम, धर्म शास्त्रादि इसी के अन्तर्गत हैं। इनमें भी परतत्त्व की उपासना का विधान है जिसमें सभी का अधिकार है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी स्मृति में उपदिष्ट उपासना कर सकते हैं इसके लिए उपनयन संस्कार का नियम नहीं है।

उपासना के द्वारा जीव का उद्धार हो जाता है, किन्तु इसका भी बहुत विस्तृत विधान हैं श्रीमद्भागवत् का श्रवण, रामायण का पाठ, मंदिर निर्माण, मूर्ति पूजन, तीर्थ यात्रा आदि उपासना के अंग हैं। ये सभी कार्य परम धैर्य, द्रव्यव्यय, संयम और श्रम से सम्पन्न हो सकते हैं। जब जीव इन सभी कर्मों को करने में स्वयं को अशक्त जानता हैं तो वह भगवान् का आश्रय लेता है इसे ही प्रपत्ति कहते हैं यहां उपेय ही उपाय होता है।

इसी प्रपत्ति को हम शरणागति भी कहते हैं। शरणागति का अर्थ है शरण में आना। समस्त वेदों का सार उपनिषद् और सारे उपनिषदों का सार गीता है, गीता का सार शरणागति है। समस्त धर्मों के परित्याग के पश्चात् ईश्वर की शरणांगति ही अर्जुन के लक्ष्य से मानव मात्र के लिए गीता का सर्वगुह्यतम् उपदेश है।

जब-जब भक्तों ने भगवान् की शरण में आकर उनसे रक्षा की याचना की है, तब तब भगवान् नें भक्तों की रक्षा अवश्य की है।

गीता के- ''दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।''[13] इत्यादि वचनों में प्रपत्ति अथवा शरणागति का ही प्रतिपादन है।

शरणागति छः प्रकार की मानी गयी है- षोढा हि वेदविदुषों वदन्त्येनं महामुने। आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा। आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।।''[14]

वे छः प्रकार अधोलिखित हैं- *1. अनुकूलता का संकल्प;* भगवान् के अनुकूल रहने का विचार। ईश्वर के विधान में ही अपना हित मानना। वे जैसे रक्खें उसी में प्रसन्नता का अनुभव। *2. प्रतिकूलता का त्याग;* अत्यधिक कष्ट में होने पर भी ईश्वर पर अविश्वास न करना। उनके कठोर विधानों में भी उनके प्रति दुर्भाव न लाना। *3. केवल विश्वास ही नहीं अपितु भगवान् को रक्षक बना लेना;* ईश्वर हर बुराईयों से और दुर्गतियों से अवश्य ही हमारी रक्षा करेंगे इस बात का विश्वास रखना। *4. आत्मसमर्पण की भावना;* अपना कहलाने योग्य जो भी आपके पास हैं देह, इन्द्रिय, चैतन्य आदि। उसको भगवान् को पूर्णतया अर्पण कर देना। *5. अकिंचनता की भावना;* सब कुछ ईश्वर का ही है, मेरा कुछ भी नहीं, ऐसी दृढ़ धारणा, ईश्वर ही मेरे धन हैं ऐसी बुद्धि। *6. भगवान मेरी रक्षा करेंगे ही;* इस प्रकार का दृढ़ विश्वास - प्रत्येक समय ईश्वर उसके साथ हैं और अवश्य उनकी रक्षा करेंगे ऐसा दृढ़ विश्वास होना।

इस प्रकार ईश्वर की शरण ग्रहण करना भी उपासना का ही विधान है।

सन्दर्भ

[1] *गीता,* 9/22
[2] *गीता,* 14/26
[3] *ब्रह्मतन्त्र*
[4] *ब्रह्मसूत्र,* 1/3/43
[5] *ब्रह्मतत्व*
[6] *अग्निपुराण,* 236/10
[7] *गीता,* 11/43
[8] *श्रीमद्भागवत्,* 12/13/16
[9] *रामायण*
[10] *श्रीमद्भागवत्,* 7/5/23
[11] *ब्रह्मसूत्र पर श्री भाष्य,* 4/3/14
[12] *गीता,* 12/5
[13] *गीता,* 7/14
[14] *अहिर्बुध्यसंहिता,* 37/27-29

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ. मनीषा शुक्ला ,प्रधान सम्पादिका आन्वीक्षिकी भारतीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com)

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें,शीर्षक ;सारांश ;पाण्डुलिपि ;पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक :शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें,किन्तु अपना पूरा नाम,पता,संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय,दूरभाष अथवा मोबाइल,फैक्स,ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश :कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि :इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी ; जो 5 से 10 पृष्ठ तक होनी चाहिये। शोधपत्र 10 पृष्ठ से (सारांश,शब्द संक्षेप,संदर्भ सूची समेत)अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र(10 पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है ; पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रामानुसार :शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष,लेखक, पृष्ठ संख्या,भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक :प्रकाशक का नाम,संस्करण संख्या,प्रकाशन वर्ष,लेखक का नाम,पुस्तक का नाम,पृष्ठ संख्या

पत्रिका :पत्रिका का नाम,लेख का शीर्षक,लेखक का नाम,प्रकाशक का नाम,अंक संख्या/माह,वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र :प्रकाशक,तिथि,सन् ,पृष्ठ संख्या,

इण्टरनेट :वेबसाइड,पृष्ठ संख्या,मुख्य शीर्षक,अन्त: शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी :मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें(उदाहरण सारणी संख्या 1)

विशेष :कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो,स्वपता लिखा लिफाफा(25 रू के टिकट सहित)भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए.पी.एस प्रियंका रोमन(ए.पी.एस. कार्पोरेट 2000++)में तैयार सी.डी के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक को स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिका से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अंतिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

Other MPASVO Journals

Saarc : International Journal of Research
(Six Monthly Journal)
www.anvikshikijournal.com

Asian Journal of Modern & Ayurvedic Medical Science
(Six Monthly Journal)
www.ajmams.com

IJRA
www.anvikshikijournal.com

ISSN 0973-9777
09739777
₹ 1200/-